श्रीशक्तिमहिम्नः स्तोत्रम्
माँ भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के श्रीचरणों में
सादर सप्रेम भेंट समर्पित

श्री दक्षिणामूर्ति भगवान
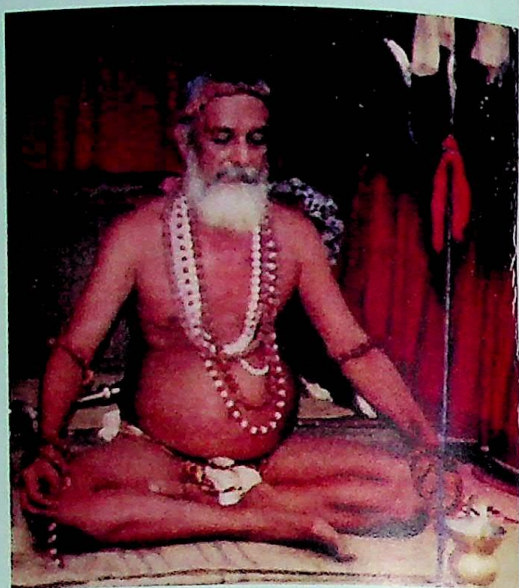
स्वामी श्री सत्यानन्द सरस्वती जी
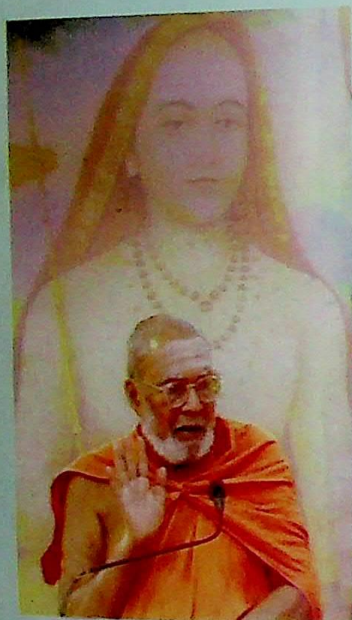
स्वामी श्री रामानन्द सरस्वती जी
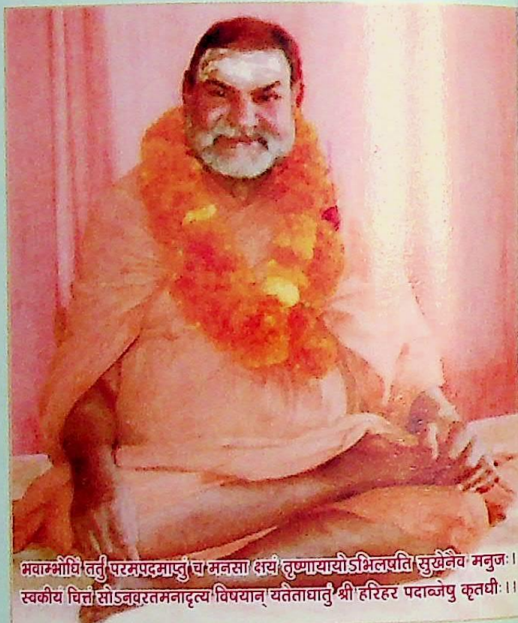
स्वामी श्री हरिहर तीर्थ जी

शुद्धिपत्रम्

	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठसंख्या	पंक्ति
1	वें	वें श्लोक	6	2,4,5
2	स्थिति	स्थित	6	10
3	का	की	7	11,12,14
4	के	की	7	18, 30
5	के	की	8	5
6	कर्ता	कर्ता ने	8	7
7	को, करत	की, करते	10	8
8	करत है	करते हैं	10	14
9	का	की	13	28
10	की	के	14	7
11	हिपण्यगर्भ	हिरण्यगर्भ	25	30
12	कजाबीज	कलाबीज	31	5
13	का	की	33	2
14	आपक	आपके	37	9
15	हा	हो	38	23
16	हे	है	43	2

1. पृष्ठ संख्या 43 में चार पंक्तियाँ पढकर पृष्ठ 42 में दर्शायी गयी तालिका को पढने के पश्चात् पृष्ठ 43 में व्याख्या पढें।

	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठसंख्या	पंक्ति
17	लेकिन-	लेकिन	44	1
18	वाचता	वाचकता	54	5
19	आधार	मूलाधार	54	8
20	आपकक	आपके	64	28
21	कक, का	के, के	68	13
22	कसे	कैसे	71	28
23	क, मातक	के, मातृका	72	1, 4
24	चारण	चरण	78	19
25	कक, का	के, की	81	2, 25
26	की	के	86	7, 14, 27

28	छँवर	चँवर	93	14, 27
29	क	के	96	7
30	सकता	सकती	97	25
31	क	के	102	17
32	जागत, जिसको	जाग्रत, जिसकी	103	11, 11
33	क	के	108	9, 10
34	नाष्ट	नष्ट	115	13, 20
35	क, हं	के, हैं	134	22

1. पृष्ठ संख्या 135 में छठी पंक्ति के बाद इसी पृष्ठ का अन्तिम पैरा पढ़ें, तत्पश्चात् सातवीं पंक्ति से शुरु करके बारह पंक्तियाँ पढने के अनन्तर पृष्ठ 136 पढें।

	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठसंख्या	पंक्ति
36	शारीरक	शारीरिक	136	18
36	के	से	140	3
38	सर्वांगीन	सर्वांगीण	142	25
39	कालीदास	कालिदास	148	26
40	अनाहतचक्र	मिटायें	154	5
41	मुला	मूला	154	7
42	अज्ञा	आज्ञा	154	9
43	के दशष्टि	की दृष्टि	154	11
44	सदश्शो	सदृशो	154	12
45	सशष्टि	सृष्टि	154	14
46	बाज	बीज	154	19
47	सशष्टि	सृष्टि	154	19
48	जागश्त	जागृत	154	24
49	संस्कशति	संस्कृति	154	25

2. पृष्ठ 154 में "हरिः ऊँ तत्सद्" से पहले इस पैरा को पढें –

इस ग्रन्थ का लेखन, संपादन, संशोधन, प्रकाशन आदि विविध कार्य में सहयोग प्रदान करनेवाले समस्त आदरणीय सन्त–महात्माओं, ब्रह्मचारी–साधकों और भक्तों के सर्वांगीण अभिवृद्धि एवं विशेषतः आध्यात्मिक प्रगति केलिये मैं, व्याख्याता, श्री स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती, माँ भगवती से प्रार्थना करता हूँ व सहृदय से सब की मंगलकामना करता हूँ।

ॐ

श्रीशक्तिमहिम्नः

स्तोत्रम्

श्री स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती जी

द्वारा कृत हिन्दी व्याख्या सहित

सत्यं साधना कुटीर

181, ग्रा0 गौहरी माफी, पो0 रायवाला,

ऋषिकेश, 249205 उत्तराखण्ड

ग्रन्थनामः-श्रीशक्तिमहिम्नः स्तोत्रम्

प्रकाशक :
श्री सत्यं साधना कुटीर समिति, ऋषिकेश.

प्रथम संस्करण : शनिवार, 12 जुलाई 2014, गुरु पूर्णिमा,
आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा, संवत् 2071.
प्रतियां : 1000 (हजार)
प्रधान सम्पादक : स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती
सम्पादक मण्डल: स्वामी सर्वेशानन्द सरस्वती
ब्र. रामकृष्णान् और चौ. विजय पाल सिंहजी
अक्षर संयोजन : स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती.

पुस्तक प्राप्ति स्थान-
श्री सत्यं साधना कुटीर समिति,
ाम-गौहरी माफी, पो. रायवाला, ऋषिकेश
ला- देहरादून 249205 (उत्तराखण्ड)
.भाष सं.-9557130251,

सहयोग राशि : 120/=

मुद्रक : सेमवाल प्रिंटिंग प्रेस, ऋषिकेश.

भूमिका

मानव शरीर में विद्यमान स्वाभाविक तीन शक्ति – स्थूल शरीर में काम करने की शक्ति, हृदय में भक्ति व प्यार करने की शक्ति और मन बुद्धि में चिन्तन व विचार कर निश्चय करने की शक्ति – इन को संतुलित कर अन्तःकरण की शुद्धि पूर्वक मोक्ष प्राप्त करने हेतु श्रुति और स्मृति यानि वेद और पुराण आदि ग्रन्थों में तीन प्रमुख साधन बताये हैं। वे हैं – कर्मयोग, भक्तियोग/उपासना और ज्ञानयोग। निष्काम भाव से शास्त्र विहित कर्म और समाज सेवा आदि को कर्मयोग कहते हैं, कर्मयोग से जब अन्तःकरण कुछ शुद्ध हो जाय तब मन की चंचलता कम होने पर हृदय से परमात्मा के बारे में सुनना, नाम संकीर्तन करना आदि नौ प्रकार से उपासना करने को भक्तियोग कहते हैं और उपनिषद् आदि आत्मा के स्वरूप को वर्णन करनेवाले शास्त्रों को गुरुमुख से सुनकर मनन एवं निदिध्यासन के अभ्यास द्वारा अपने आत्मा का अनुभव करने को ज्ञानयोग कहते हैं। ये तीनों उसी प्रकार हैं जैसे खेती को जोतना – कर्मयोग, जल सींचना – भक्तियोग और बीज बोना – ज्ञानयोग, जिससे मोक्ष रूपी फसल मिलती है। यद्यपि तीनों ही बराबर साधन है फिर भी भक्ति योग का महत्त्व कुछ विशेष ही है क्योंकि वह अहंकार को तोडकर साधक को ज्ञान का अधिकारी बनाता है। भक्ति योग में बताये गये श्रवण, कीर्तन, आदि नौ साधनों में आत्मनिवेदन (शरणागति) प्रमुख है।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्।।" (भागवत)।

आत्मनिवेदन को भी नमस्कार, परिक्रमा, आदि अनेक प्रकार से किया जाता है। लेकिन सब से सरल तरीका है स्तुति करना, इस केलिये ही स्वयं परमात्मा ने पूर्ण भक्ति भाव में स्थित भक्तों के श्रीमुख से स्तोत्रों को प्रकट किया है। ऐसे स्तोत्रों में महिम्नः स्तोत्र का स्थान सर्वोच्च है, क्योंकि शिवमहिम्नः स्तोत्र में कहा

गया है कि "महिम्नो ना परा स्तुतिः (श्लोक 37)" अर्थात् महिम्न से बढकर कोई स्तुति नहीं है। यह बात सभी पांच वैदिक संप्रदाय के पांच देवता – गणेश, विष्णु, सूर्य, शिव और शक्ति के महिम्न स्तोत्रों में पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। इसलिये अत्यन्त दुर्लभ "शक्तिमहिम्नः स्तोत्र" को राष्ट्रभाषा हिन्दी व्याख्या सहित आप सब माँ भगवती के भक्तों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूं ताकि अर्थ समझकर पाठ करने से पूरा फल मिल सके। "तज्जपस्तदर्थभावनं" –योगसूत्र 1.28 (जिस मन्त्र, स्तोत्र आदि का जप, पाठ आदि करते हैं उनके अर्थ को जानकर उसकी भावना करें)। छान्दोग्योपनिषद् में भी कहा है– "यदेव विद्यया करोति तदेव वीर्यवत्तरं भवति।"

इस वर्तमान टीका से पूर्व में भी अनेक भाषाओं में शक्ति महिम्नः स्तोत्र की टीकायें उपलब्ध रही है, जैसे कि संस्कृत में श्री नित्यानन्दनाथ कृत संक्षिप्त एवं सारगर्भित टीका (समय अज्ञात), गुजराती भाषा में भी एक टीका उपलब्ध है (सन्1924, संवत् 1981 श्रा.शु.प्र0) तथा हिन्दी में पीताम्बरा पीठ, दतिया, मध्यप्रदेश द्वारा छपाया गया था (सन् 1969, संवत् 2026 चैत्र.शु. नवमी) जो आज भी उपलब्ध है। इनके अलावा अंग्रेजी में श्री पी. आर्. रामचन्दर द्वारा लिखा हुआ टीका छपाया गया था (समय अज्ञात) तथा मुझे एक और अंग्रेजी टीका इंटरनेट से www.kamakotimandali.com के सौजन्य से मिली (लेखक व समय अज्ञात)।

मुमुक्षु ऋषियों ने समाधि अवस्था में गुरु एवं भगवत्कृपा से आत्मा को अनुभव कर परम तत्त्व के साक्षात्कार केलिये अधिकारी भेद से विभिन्न विचार धाराओं को प्रस्तुत किया है। भोग वादियों केलिये भौतिकवाद परक चार्वाक दर्शन से आरम्भ करके अध्यात्म वादियों केलिये केवलाद्वैतवाद परक वेदान्त दर्शन। अतः जैनों का अर्हन्, बौद्धों का शून्य आदि चार पक्ष, मीमांसकों का कर्म, सांख्य और योग का अनेक पुरुष, न्याय और वैशेषिक का पदार्थ, वैष्णवों का विष्णु, शैवों का शिव, वेदान्त का ब्रह्म इत्यादि जिस

तत्त्व का साक्षात्कार तत्तद् दर्शनों में बताये गये साधनों से साधक मोक्ष को प्राप्त करते हैं, उसी तत्त्व को शाक्त मत में शक्ति कहते हैं। जिसे और दस विभिन्न रूपों में कहा गया है – काली, भैरवी, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, मातंगी, छिन्नमस्ता, बगलामुखी, कमला और धूमावती इन्हें दश महाविद्या नाम से भी जाना जाता है। जैसे कि शास्त्र में कहा है–

"काली च भैरवी तारा षोडशी भुवनेश्वरी।
मातंगी छिन्नमस्ता च बगला कमला तथा।।
धूमावतीति वेदज्ञैर्महाविद्या दशेरिताः।"

प्रस्तुत शक्ति महिम्नः स्तोत्र षोडशी महाविद्या से संबंधित है। इसे परा विद्या और त्रिपुरमहासुन्दरी नामों से कहा गया है।

महामुनि दुर्वासा जी ने विभिन्न छन्दों में 60 श्लोकों में पराम्बा महात्रिपुरसुन्दरी की स्तुति करने के बहाने श्रीविद्या साधना की प्रायः सभी सूक्ष्म बातों को भी संकेत रूप से कह दिया हैं। दुर्वासा महर्षि के बारे में भागवत आदि पुराणों तथा महाभारत, आदि ग्रन्थों में पर्याप्त वर्णन है। श्री दुर्वासाजी सती अनसूयाजी के गर्भ से अत्रि महर्षि के पुत्र व त्रिदेव अवतार दत्तात्रेयजी के सहोदर भ्राता के रूप में अवतरित हुये। इनको रुद्रावतार माना गया है। इनकी तपःस्थली बिहार प्रान्त के भागलपुर जिले के समीप एक पर्वत पर बतायी जाती है, कुछ अन्य मतों के अनुसार नैमिषारण्य इनकी तपःस्थली है। स्वभाव से क्रोधी होने के कारण वे क्रोधभट्टारक नाम से भी प्रसिद्ध हैं। वर और शाप देने में आप सिद्ध हस्त थे, इसलिये कहा है

"क्षणं रुष्टं क्षणं तुष्टं, रुष्टं तुष्टं क्षणं क्षणं'(स्कन्दपुराण)।

स्तोत्र का सारांश इस प्रकार है– 1 से 4 श्लोक तक माँ के स्वरूप का वर्णन कर 5 से 15वें श्लोक तक त्रिबीज का वर्णन किया है। 16 और 17वें श्लोक में पंचदशी मन्त्र का प्रकारान्तर से वर्णन कर सांकेतिक रूप से बताया है। 18 से 31वें श्लोक

तक पूर्वपक्षों के खण्डन पूर्वक उपासना की आवश्यकता को सिद्ध किया है। 31 से 47वें तक माँ के विभिन्न अंगों और 48 से 50वें तक माँ के आयुधों का वर्णन कर उनके ध्यान करने का फल बताया है। 51वें श्लोक में न्यास की विधि दर्शायी है। 52 से 60 तक फल स्तुति है। 61वें में अवतार का प्रयोजन व समाप्ति है।

स्तोत्र के प्रत्येक श्लोक का सारांश इस प्रकार है— 1. शिव आदि से भी अवर्णनीय माँ के सूक्ष्मतम रूप का आकाशपतत्री न्याय से वर्णन करना दोष नहीं है। 2. माँ के सूक्ष्मतर स्वरूप का वर्णन किया है। 3. वर्णमालारूपिणी माँ के सूक्ष्म स्वरूप को कुण्डलिनी के रूप से षट्चक्रों में स्थिति बताया है। 4. माँ के स्थूल स्वरूप मूर्तिरूपता की विविधता दर्शायी है। 5. वाग्भवबीज की वन्दना पूर्वक स्तुति की है। 6. वाग्भवबीज के प्रथम अक्षर का स्तुति पूर्वक वर्णन है। 7. वाग्भव बीज के प्रथमाक्षर के ऊपर स्थित अर्धचन्द्रबिन्दु मात्रा की कुण्डलिनी के रूप में स्तुति की है। 8. कामराजबीज की स्तुति की है। 9. कामराजबीज के सामर्थ्य को बताया है। 10. कामराजबीज के द्वितीय अक्षर का वर्णन किया है। 11. कामराजबीज के तृतीय अक्षर का वर्णन किया है। 12. बीजात्मक माँ भगवती की वन्दना करते हैं। 13. परा बीज जपने का फल बताया है। 14. पराबीज के ध्यान करने का फल बताया है। 15. तीनों बीजों अथवा उनमें से किसी भी बीज के जप आदि के फल का वर्णन किया है। 16. उक्त त्रिबीज अथवा पंचदशी को दूसरे प्रकार से वर्णन कर फल रूप से उपासक के सामर्थ्य को बताया है। 17. पंचदशी मन्त्र को सांकेतिकरूप से प्रकट किया है। 18. उपासना की आवश्यकता और महत्त्व को बताया है। 19. उपासना के विना क्या ज्ञान संभव है? इस प्रश्न का उत्तर दिया है। 20. उपासना से अनिष्टकारक भी इष्टकारक और असंभव भी संभव होता है। 21. त्रिपुरा नाम की निरुक्ति द्वारा त्रिकों के रूप में माँ की सर्वत्र व्याप्ति दर्शायी है। 22. कूटत्रय की प्रणव रूपता को दर्शाया है। 23. गायत्री युक्त सन्ध्या के रूप में माँ का वर्णन किया है। 24. पंचकोशों के

द्वारा माँ भगवती के स्वरूप का वर्णन किया है। 25. दीक्षा की आवश्यकता और उसके फल का कथन किया है। 26. अन्य विद्याओं की अपेक्षा श्रीविद्या की श्रेष्ठता को बताया है। 27. आत्मज्ञान के साधन श्रवण, मनन, निदिध्यासन की अपेक्षा से भी श्रीविद्या की श्रेष्ठता को सिद्ध किया है। 28. सभी के कल्याण केलिये प्रार्थना करते हैं। 29. व्रत यज्ञ आदि केवल वैदिक या स्मार्त कर्मों की अपेक्षा से भी श्रीविद्या की श्रेष्ठता को सिद्ध किया है। 30. अहंरूप से पराशक्ति की स्तुति करते हैं। 31. श्रीचक्र का वर्णन किया है। 32. अत्यन्त गोपनीय प्रासाद मन्त्र को प्रकट किया है। 33. माँ भगवती के आभूषणों की स्तुति की है। 34 माँ भगवती के पुष्पालंकारों व वस्त्र का स्तुति की है। 35. माँ भगवती के अवर्णनीय नितम्ब बिम्ब का स्तुति की है। 36. माँ भगवती के स्तनों की अलौकिकता की वर्णन पूर्वक स्तुति की है। 37. माँ भगवती का चारों भुजाओं और कण्ठ की स्तुति की है। 38. माँ भगवती के कर्णयुगल और नासिका क स्तुति की है। 39. माँ भगवती के मुखमण्डल की स्तुति की है। 40. माँ भगवती के भाल और होंठों की स्तुति की है। 41. माँ भगवती की वेणी की स्तुति की है। 42. माँ भगवती के मस्तक की स्तुति की है। 43. माँ भगवती के छत्र चाँवर आदि साधनों की स्तुति की है। 44. माँ भगवती के संपूर्ण शरीर के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन किया है। 45. माँ भगवती के सर्वांगीण ध्यान करने का फल बताया है। 46. माँ भगवती के आयुध धनुष का वर्णन पूर्वक ध्यान करने का फल बताया है। 47. माँ भगवती के आयुध बाणों का वर्णन पूर्वक ध्यान करने का फल बताया है। 48. माँ भगवती के आयुध पाश का वर्णन पूर्वक ध्यान करने का फल बताया है। 49. माँ भगवती के आयुध अंकुश का वर्णन पूर्वक ध्यान करने का फल बताया है। 50. चारों आयुधों का एक साथ ध्यान करने का फल बताया है। 51. उक्त उपासनाओं को करने से पूर्व उपासना के महत्त्वपूर्ण अंग न्यास को करना आवश्यक है, अतः न्यासों को सांकेतिक रूप से बताया है। 52-53. न्यास युक्त परदेवता के उपासना का

लौकिक और अलौकिक मोक्षरूपी फल क्रमशः बताया है। 54. क्षमा याचना की है जिसके विना सभी कर्म निष्फल होते हैं। 55. साधकमात्र के मन की बात को माँ भगवती के समक्ष रखा है। 56. महिम्नः स्तोत्र का नित्य पाठ करने का फल बताया है। 57. उपासक के संभावित अभिलाषाओं को बताया है। 58. अविद्वान पाठक को प्राप्त होनेवाला फल बताया है। 59. विद्वान पाठक को प्राप्त होनेवाला फल बताये हैं। 60. स्तोत्र कर्ता स्वयं का परिचय दिया है। 61. महर्षि के अवतरण का प्रयोजन बताकर स्तोत्र को समाप्त किया है।

त्रिपुरा महिम्नः स्तोत्र की प्रस्तुत हिन्दी व्याख्या, नित्यानन्द नाथ विरचित संस्कृत टीका, डॉ अश्चिन कुमार शुक्ल द्वारा कृत गुजराती टीका का हिन्दी अनुवाद, पी.आर. रामचन्द्र कृत तथा कामकोटीमण्डलि द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में कृत व्याख्याओं के आधार पर स्वतन्त्र रूप से विरचित है। प्रस्तुत व्याख्या केवल श्रीविद्या के उपासकों को ही नहीं बल्कि समस्त देवीभक्त, जिज्ञासु, मुमुक्षु, ब्रह्मचारी, सद्गृहस्थ और सांसारिक सुखाभिलाषियों को भी अवश्य लाभप्रद होगी। अतः आशा है कि मानव जाति के सभी वर्ग इसे अपना कर अपने मनोवांछित फल को अवश्य प्राप्त करेंगे तथा विशेष रूप से आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढकर मानव मात्र के लक्ष्य मोक्ष को इसी जन्म में प्राप्त करने केलिये उपयोग करेंगे।

विशेष ध्यातव्यः— इस प्रकाशन में शक्ति महिम्नः स्तोत्र को 61 श्लोकों का मानकर व्याख्या की गयी है। लेकिन कुछ अन्य प्रकाशकों ने 8 श्लोक कम माने हैं, वे हैं हमारे पाठक्रम के अनुसार – श्लोक संख्या 1, 4, 12, 17, 43, 44, 53 और 61। अनेकों श्लोकों में पाठ भेद है, उनका संकेत तत्तद् श्लोक के अन्त में ही दिया गया है।

।।देव्यर्पणमस्तु। सर्वेषां कल्याणमस्तु।।

पाठक ध्यान दें:– यह प्रथम श्लोक अनुष्टुप्छन्द में है। उसका लक्षण है– "श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्। द्विचतु:पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।" अर्थात् श्लोक के प्रथम पाद का छठा अक्षर गुरु होगा, प्रथम और तीसरे पाद का सातवां अक्षर दीर्घ होगा, द्वितीय और चतुर्थ पाद का सातवां अक्षर ह्रस्व होगा तथा सभी पादों का पांचवां अक्षर लघु होगा।

श्री दुर्वासामहर्षिरुवाच :–

मातस्ते महिमा वक्तुं शिवेनापि न शक्यते।

भक्त्याहं स्तोतुमिच्छामि प्रसीद मम सर्वदा।।1।।

श्री दुर्वासा महर्षिजी ने इस प्रकार स्तुति की–

भावार्थ:– हे माते! सभी विद्याओं के अधिपति महादेवजी भी आपकी महिमा का वर्णन करने में असमर्थ हैं, तो मनुष्य आदि आपकी महिमा का वर्णन कैसे कर सकते हैं। फिर भी भक्तिभाव से प्रेरित होकर मैं आपका स्तवन अर्थात् आपकी महिमा का वर्णन करना चाहता हूँ। इसलिये मुझ पर आप सदा प्रसन्न रहें।

अन्वितार्थ:– हे मातः!= हे माते!, शिवेनापि= शिवजी के द्वारा भी, ते= तव= आपकी, महिमा वक्तुं= महिमा कथन करना, न शक्यते= संभव नहीं, (फिर भी) अहं= मैं, भक्त्या= भक्ति से प्रेरित होकर, स्तोतुं= स्तुति, इच्छामि= करना चाहता हूँ, (आप) मम= मुझ पर, सर्वदा= सदा, प्रसीद= प्रसन्न होवें।

व्याख्या:– जैसे भगवान वेद व्यासजी ने भी मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत श्री सप्तशती में कहा है कि माँ भगवती के प्रभाव का वर्णन करने में ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि देवता भी समर्थ नहीं हैं तथा पूज्यपाद श्री आद्य शंकराचार्यजी भी आनन्दलहरी में लिखते हैं कि ब्रह्मा आदि देवता भी माँ भगवती का स्तवन करने में समर्थ नहीं हैं और इनके सिवाय अनेकों ग्रन्थों में कहा गया है कि सृष्टि के नियामक देवताओं में भी माँ भगवती का यथार्थ स्वरूप वर्णन करने का सामर्थ्य नहीं है, तो मनुष्य कोटि में

प्रविष्ट मैं, दुर्वासा मुनि, आपका वर्णन कैसे कर सकता हूँ। फिर भी "आकाश पतत्री न्याय" (जिस प्रकार कोई भी पक्षी अपने उडने के सामर्थ्य से आकाश को आर पार नहीं कर सकता फिर भी उनका अपने सामर्थ्य के अनुसार उडान भरना कोई दोष नहीं है) से मैं भी अपने भक्ति के बल से आपकी स्तुति करता हूँ तो यह अपराध या दोष कैसे हो सकता है। अतः इस श्लोक में अपना अभिप्राय उक्त प्रकार से बताते हुए दुर्वासा मुनिजी भक्ति बल से माँ को स्तुति करने केलिये माँ से ही मंगल प्रार्थना करत हैं।।1।।

श्लोक संख्या 2 से 45वें श्लोक तक शार्दूलविक्रीडित छन्द में है। उसका लक्षण है–"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः।" अर्थात् म,स,ज,स,त,त,ग गणों से निर्मित है और 12,7 अक्षर का विभाग कर पाठ करना है। इस श्लोक में त्रिकूटात्मक त्र्यक्षरी मन्त्र के उद्धार का संकेत कर माँ भगवती के स्वरूप को मन में सदा विराजित रहने हेतु प्रार्थना करत है, अर्थात् लक्ष्य क स्वरूप को बता रहे हैं–

श्रीमातस्त्रिपुरे परात्परतरे देवि त्रिलोकीमहा–
सैन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम्।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं ते वपुः।
स्वान्ते मे स्फुरतु त्रिकोणनिलयं ज्येतिर्मयं वाङ्मय।2।

भावार्थः– हे माँ भगवती श्री त्रिपुरा देवी! आप पर से भी परतर हैं। तीनों लोकों में महान् सौन्दर्य रूपी समुद्र के मन्थन से उत्पन्न अमृत के समान अत्यन्त उज्ज्वल, उगते हुये हजारों सूर्य तथा खिलते हुये हजारों नूतन जपा पुष्प के समान रक्तवर्ण वाले, श्रीचक्र के त्रिकोण को अपना निवास स्थान करके रहनेवाला आपका प्रकाशमय एवं चतुर्विध वाणी स्वरूप आपका मूर्त शरीर मेरे ह्रदय में सदा स्फुरित होता रहे।

अन्वितार्थः– हे श्रीमातः! श्री=सर्वैश्वर्य युक्त, मा= माया, अतः= पश्चात् अर्थात् आप सर्वैश्वर्य युक्त माया विशिष्ट स्वरूपवाली हं

अथवा श्री=लक्ष्मी, माता=सरस्वती, (जैसे की व्याडि कोश में कहा है–

''लक्ष्मी सरस्वती धात्रीत्रिवर्गसंपद्विभूतिशोभासु उपकरणवेषरचना विद्यासु श्रीविद्ये प्रथिते'')। अथवा

''अभियुक्तानां नाम श्रीपदपूर्वकं प्रयुंजीत'' (अर्थात् पूज्य एवं बडों का नाम श्री लगाकर ही लेना चाहिये) और

''देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवताम्।

सिद्धं सिद्धाधिकारॉंश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत्।।'(सर्वलक्षणसंग्रहः)

(ईश्वर, गुरु, गुरुस्थान, क्षेत्र, क्षेत्र का अधिष्ठात्री देवता, सिद्ध महापुरुष, सिद्ध महापुरुष के उत्तराधिकारी महापुरुष– इनके नाम से पहले 'श्री' शब्द को जोडकर ही नाम का प्रयोग करें।) इस वचन के अनुसार माँ अत्यन्त पूज्यनीया होने से श्री लगाया गया है अर्थात् इस स्थल में श्री शब्द का कोई अर्थ नहीं है किन्तु वह केवल सम्मान का द्योतक है। हे त्रिपुरे= हे परात्परतरे– आप सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपवाली है अथवा आप परात्= मायाबीज से परतरा = लक्ष्मीबीज हैं। हे देवी! दिव्य क्रीडा में तत्पर रहनेवाली। त्रिलोकीमहासौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम् = स्वर्ग पृथिवी और पाताल – इन तीनों लोकों के सौन्दर्य रूप महान् समुद्र के मन्थन से उत्पन्न अमृत के समान अत्यन्त उज्ज्वल हैं जो, उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं = उगते हुए हजारों सूर्य की लालिमा और ताजा खिले हुये जपा पुष्प के लाल रंग के समान कान्तिमान हैं जो, त्रिलोकनिलयं = तीनों लोक निवास स्थान हैं जिसके ऐसा जो आपका तीनों लोकों की उत्पत्ति का कारण कामकलारूप है, ज्योतिर्मयं = सूर्य अग्नि और चन्द्रमा के तेज से युक्त है जो, तथा वाङ्मयं = परा पश्यन्ति मध्यमा और वैखरी वाणी स्वरूप हैं जो, ते = आपका, वपुः = शरीर, मे = मेरे अथवा मा (श्रीबीज) + ई (कामकलाबीज) = मे अर्थात् श्री और कामकला सहित, स्वान्ते = मेरे हृदय में, स्फुरतु = प्रकट होवे अर्थात् सदा मेरे मन की भावना का विषय होवे।

व्याख्याः– इस श्लोक में उत्तम अधिकारी मुमुक्षुओं केलिये माँभगवती के पारमार्थिक स्वरूप का वर्णन किया है। हे त्रिपुरे– त्रिपुरा शब्द के संबोधन में एक वचन का रूप है अथवा त्रि+पुरा+ई, त्रि= तीन, पुरा= बाला विद्या के बीज, ई = प्रणव (ओंकारः) अथवा त्रि= तीन, पुरा= पहले ''तिसृभ्यो मूर्तिभ्यो सर्गात्पुरातनत्वात् पुरा भवत्वाद्वा त्रिपुरा'' यह कथन सिद्धेश्वरी मत में कहा गया है–''ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्रिदेवैरर्चिता पुरा। त्रिपुरेति तदा नाम कथितं देवतैः पुरा'' अर्थात् ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर की मूर्तियों के प्राकट्य से पहले विद्यमान रहने से और उनके द्वारा अर्चित होने से देवताओं के द्वारा आपको त्रिपुरा नाम से कहा गया है अथवा श्रीगौडपादाचार्यभगवत्पादजी ने भी कहा है (शक्तिसूत्र) श्रीविद्यारत्नसूत्र में– ''तत्त्वत्रयेण सा विविधा (सू 5)''

अर्थात् अद्वितीय शक्ति ही तीन उपाधियों के कारण तीन प्रकार के भेद को प्राप्त होती है अथवा त्रिपुरार्णव नामक ग्रन्थ में कहा है–

''नाडी त्रयं तु त्रिपुरा सुषुम्ना पिंगलात्विडा।
मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।।
तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरा मता।।''

अर्थात् सुषुम्ना पिंगला और इडा इन तीन नाडियों को त्रिशब्द से और मन बुद्धि चित्त इन तीन अन्तःकरण को पुरा शब्द से कहा है और उनमें निवास करने से त्रिपुरा कहा गया है, तात्पर्य यह है कि अन्तःकरण के इन तीन पुरों में तीन नाडियों द्वारा निवास करनेवाली त्रिपुरा है अथवा सुन्दरीस्तव नामक ग्रन्थ में कहा है कि–

''ब्राह्मी रौद्री वैष्णवीति शक्तयस्तिस्र एव हि।
पुरं शरीरं यस्या सा त्रिपुरेति प्रकीर्तिता।।''

अर्थात् ब्रह्मा की शक्ति, रुद्र की शक्ति और विष्णु की शक्ति ये तीनों शक्ति जिसका शरीर है उसे त्रिपुरा कहा जाता

है अथवा कामकलाविलास नामक ग्रन्थ में कहा है–

"माता मानं मेयं बिन्दुत्रयं भिन्नबीजरूपाणि।
धामत्रयपीठत्रयशक्तित्रयभावितान्यपि च।।"

अर्थात् ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय (ईश्वर विद्या शक्ति)– ज्ञत्रय, वाग्भव कामराज शक्तिकूट– धामत्रय, रक्त शुक्ल मिश्र– बिन्दुत्रय, पूर्णागिरि कामाक्षा जालन्धर– पीठत्रय, इच्छा ज्ञान क्रिया– शक्तित्रय, इन त्रिकों से भावित होने से आप त्रिपुरा हैं अथवा वामा ज्येष्ठा रौद्री– विशिष्टशक्तित्रय, स्वयम्भू बाण इतर– लिंगत्रय, अकथ– मातृकात्रय, इत्यादि सृष्टि में विद्यमान समस्त त्रिकों का आश्रय होने से आप त्रिपुरा हैं। त्रिलोकी– इस शब्द से त्रिकूटा अर्थात् पंचदशी के तीनों कूटों का संकेत करके, महासौन्दर्यार्णवोद्भव0 – इस विशेषण से बालात्रिपुरसुन्दरी के त्र्यक्षरी मन्त्र के प्रथम वाक्कूट की, उद्यद्भानुसहस्र0 और त्रिलोकनिलयं– इन दो विशेषणों से त्र्यक्षरी मन्त्र के द्वितीय कामराज कूट की (क्योंकि वामकेश्वर तन्त्र में काम कला अक्षर से ही संसार की उत्पत्ति दर्शायी है जिसका विवरण छठे श्लोक में किया जायेगा) तथा ज्योतिर्मयं वाङ्मयं– इन दो विशेषणों से त्र्यक्षरी मन्त्र के तृतीय शक्ति कूट की भावना प्रतिपादित की गयी है (क्योंकि तृतीय कूट भाग्यप्रद होने से ज्येतिर्मय और सारस्वत होने से वाङ्मय रूप भी है)। अतः त्रिपुरा– त्रिलोक–त्रिकोण में निवास करने के कारण आप अनिर्वाच्य महामाया एक होते हुये भी तीनगुणों के संबंध से विश्व का विस्तार करती हैं और खुद बीजरूप में सर्वत्र अनुस्यूत हैं। इसलिये आप के अलावा अन्य कोई भी चीज मन और वाणी के विषयों में है ही नहीं। फिर भी अज्ञान के कारण अभक्त व असाधक सर्वत्र माँ भगवती के साक्षात्कार का लाभ प्राप्त नहीं कर पाता है।।2।।

षट्चक्रों का भेदन कर सहस्रार में स्थित त्रिकोण में विराजमान समस्त विद्यायें और संपूर्ण मन्त्रों का जननी कुण्डलिनी शक्ति की स्तुति करते हुये मुक्ति का साधन बता रहे हैं–

आदिक्षान्तसमस्तवर्णसुमणिप्रोते वितानप्रभे
ब्रह्मादिप्रतिमाभिकीलितषडाधाराब्जकक्षोन्नते।
ब्रह्माण्डाब्जमहासने जननि ते मूर्तिं भजे चिन्मयीं
सौषुम्नायतपीतपंकजमहामध्यत्रिकोणस्थिताम्।।3।।

भावार्थः– हे जननी! अकारादि क्षकारपर्यन्त पूरे 50 वर्णरूप सुन्दर मणियों से पिरोये गये, विस्तृत प्रकाशरूपिणी जो ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रकाश को कीलित करते हुये मूलाधारादि षट्चक्ररूपी कक्षाओं में उन्नत है और जो समस्त ब्रह्मण्डरूप कमलासन पर अधिष्ठित रहनेवाली तथा प्राणायामादि क्रियाओं से खुले हुये सुषुम्ना मार्ग में लम्बायमान पीले कमल के दिव्य मध्य भाग में देदीप्यमान त्रिकोण में स्थित आपकी चैतन्यमयी सगुण मूर्ति का एकाग्रचित्त से मैं ध्यान करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे जननी! हे संपूर्ण जगत को जन्म देनेवाली माते, आदिक्षान्तसमस्तवर्णसुमणिप्रोते= अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त पचास अक्षररूपी सुन्दर मणियाँ जिसमें पिरोये हुये हैं, वितानप्रभे = अत्यन्त विस्तृत प्रभा युक्त अर्थात् उज्ज्वल और विस्तृत होने से जिसकी शोभा चांदनी के समान है, ब्रह्मादि प्रतिमाभिकीलितषडाधाराब्जकक्षोन्नते = ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्तियों के प्रकाश को कीलित अर्थात् तिरोहित करते हुये मूलाधार–स्वाधिष्ठान–मणिपुर–अनाहत–विशुद्धि और आज्ञा चक्ररूपी छः आधारभूत कमलों के मध्य में स्थित कर्णिकाओं से भी उन्नत = उच्च स्थान पर, जिसका वर्णन करते हैं कि – ब्रह्माण्डाब्जमहासने = ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल की कर्णिकारूपी महान आसन पर, जो कि सौषुम्णायतपीतपंकजमहा मध्यत्रिकोणस्थिताम्= उक्त आसन के मध्य में स्थित सुषुम्ना नाडी संबंधी पीले रंग के कमल के विस्तृत मध्य भाग में अकथ वर्णों से युक्त त्रिरेखात्मक त्रिकोण के मध्य में बिन्दु रूप से विराजमान, ते= आपके, चिन्मयीं= शिवाभिन्नता को प्राप्त चैतन्य शक्तिरूपा, मूर्ति= स्वरूप का, भजे= मैं भजन करता हूँ।

व्याख्याः– इस श्लोक में मध्यम अधिकारी साधकों केलिये माँ भगवती का मन्त्रमयी स्वरूप को दर्शाया है। आदिक्षान्त– अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः –16 स्वर, कवर्ग चवर्ग टवर्ग तवर्ग पवर्ग –25 व्यंजन, य व र ल –4 यवर्ग, श ष स ह –4 शवर्ग और क्ष –1 संयुक्तवर्ण, कुल 50। यहाँ अकारादि वर्ण मातृका के साथ देह में स्थित षट्चक्र का सामान्य रूप से निरूपण करके सुषुम्ना मार्ग से त्रिपुटी में स्थित चिन्मयी शक्ति का एकाग्रता से ध्यान करने का विधान किया है। अकारादि वर्णों में मातृकारूप से रहकर उत्पन्न हुए शब्दों के द्वारा वस्तु स्थिति का ज्ञान करानेवाला बीज मन्त्र आप ही हैं। श्वेत–रक्त–पीत आदि वर्णों के विवेचन से स्वरूप का ज्ञान होता है। इस श्लोक में देह में स्थित षट्चक्र और उनके देवताओं का निरूपण कर सुषुम्ना नाडी के माध्यम से सहस्रार में पहुँच कर शुद्ध चैतन्य का साक्षात्कार करने में भक्ति की प्राधान्यता को दर्शाया है। वर्णमाला के स्थूल 50 वर्णों के कारण स्वरूप सूक्ष्मवर्ण प्रत्येक मनुष्य के शरीर में प्राण प्रवेश से लेकर प्राणों के निकलने तक अर्थात् जीवनकाल पर्यन्त मणियों की भाँति ऊपर में उक्त मूलाधार आदि चक्ररूपी कमलों की पंखुडियों में कीलित अर्थात् जडे हुये हैं। साधक जैसे स्वेष्ट मन्त्र का बाह्य रुद्राक्ष आदि माला से जप करता है ठीक उसी प्रकार वह सुषुम्ना नाडी को अन्तर्माला का धागा मानकर मूलाधार आदि कमलों की पंखुडियों में जडित 50 अक्षरों में मणियों की भावना करते हुये मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक अकार से क्षकार पर्यन्त और ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक क्षकार से अकार पर्यन्त जप करता है। इस प्रकार जप करने से साधक को इष्ट सिद्धि शीघ्र प्राप्त होती है। क्योंकि ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार सबसे ऊपर ब्रह्मलोक और सबसे नीचे पृथिवी लोक है (साधक की दृष्टि से) उसी प्रकार पिण्डाण्ड में सबसे ऊपर सहस्रारचक्र और सबसे नीचे मूलाधारचक्र है। मूलाधारचक्र में ही सुषुम्ना नाडी रूपी पीले कमल के मध्यवर्ति अकारादि त्रिकोण में बिन्दुरूप स्वयम्भू लिंग को साढे तीन कुण्डल आकार घेरों से घेरकर

सर्पिणी के समान माँ भगवती सगुण साकार रूप से स्वयं कुण्डलिनी शक्ति के रूप में रहती हैं। जिस समय योगी साधक प्राणायाम आदि साधनों द्वारा योगाग्नि से कुण्डलिनी के मुख को संतप्त कर देता है उस समय कुण्डलिनी अपना घेरा खोल कर त्रिकोण से उठकर छः चक्रों को भेदन करते हुये सहस्रारचक्र में पहुँचकर शिव के साथ ऐक्यता को प्राप्त कर परमानन्द स्वरूप में स्थित हो जाती है, यही योगी का मोक्ष है। सहस्रारचक्र में चिच्छक्त्यैक्यता से स्रावित अमृत बिन्दु रूप मातृका अक्षर को सुषुम्ना रूपी ब्रह्मसूत्र के द्वारा सभी चक्रों में स्थित सभी देवताओं को अमृत से अभिषिक्त करती हुयी मूलाधार चक्रस्थ त्रिकोण पर्यन्त निरन्तर अमृत को वर्षाती रहती है। इस विषय में वामकेश्वर तन्त्र में सुस्पष्ट कहा है–

पद्मासनस्थः स्वस्थो गुदामाकुंच्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः।।
वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतोज्ज्वन्।
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट्।।
रुद्रग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः।
ब्रह्मग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्।।
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृत्तिकारणम्।।

अर्थात् साधक कुम्भक करने हेतु मन में निश्चय करके यदि पद्मासन अथवा सिद्धासन में स्थिर बैठकर गुदा भाग को ऊपर की ओर आकुंचन करते हुये वायु को ऊर्ध्व गति प्रदान करता है तो उस वायु के आघात से स्वाधिष्ठान में रहनेवाली अग्नि प्रज्वलित होती है। उक्त प्रकार से वायु के आघात और अग्नि के आघात का बारं बार अभ्यास करने से कुण्डलिनी शक्ति जग जाती है और तीन ग्रन्थियों एवं षट्चक्रों को भेदन करते हुये सहस्रारचक्र में पहुँचकर शिव के साथ ऐक्य होकर आनन्दरूप हो जाती है। स्वयं अमृत पानकर, अमृत वर्षा करती रहती है, इस

अवस्था को ही परा अवस्था जानो और यही अवस्था मुक्ति का कारण है।।3।।

साध्य और साधन को सामान्य रूप से बता कर अब साधन विशेष का वर्णन करने हेतु मूर्तिरूप माँ भगवती का अनेक रूप से वर्णन करते हैं:-

या बालेन्दुदिवाकराक्षिमधुरा या रक्तपद्मासना
रत्नाकल्पविराजितांगलतिका पूर्णेन्दुवक्त्रोज्ज्वला।
अक्षस्रक्सृणिपाशपुस्तककरा या बालभानुप्रभा
तां देवीं त्रिपुरां शिवां हृदि भजेऽभीष्टार्थसिद्ध्यै सदा।।4।।

भावार्थः- जो बालचन्द्र और उगते हुये सूर्य के समान मधुर नेत्रोंवाली, रक्त पद्मासन पर स्थित हैं जो, रत्नों के सदृश दिव्य एवं सुन्दर लताओं के समान कोमल अंग है जिनके, पूर्ण चन्द्र की कान्ति के समान उज्ज्वल मुख कमल है जिनका, अक्षमाला- अंकुश-पाश-पुस्तक -ये चार दिव्य आयुध चार हाथों में है जिनके और उदित होते हुये सूर्य प्रभा के समान रक्तिमा युक्त है सर्वांग जिनका, ऐसी संपूर्ण जगत का कल्याण करनेवाली माँ त्रिपुरा देवी का अपनी कामनाओं की प्राप्ति हेतु मैं सर्वदा हृदय में ध्यानपूर्वक भजन करता हूँ।

अन्वितार्थः- बालेन्दुदिवाकराक्षिमधुरा= उगते हुये पूर्णिमा के चांद और उगते हुये सूर्य के समान अत्यन्त मधुर नेत्रोंवाली है, या= जो, (और) रक्तपद्मासना= लालकमल के आसन पर बैठी हुयी है, या= जो, (तथा) रत्नाकल्पविराजितांगलतिका= रत्नों के समान दिव्य एवं सुन्दर लताओं के समान कोमल अंग हैं जिनके, (एवं) पूर्णेन्दुवक्त्रोज्ज्वला= पूर्णिमा के चन्द्रमा की कान्ति के समान मुख कान्ति है जिनकी, (और) अक्षस्रक्सृणिपाशपुस्तककरा = रुद्राक्षमाला- अंकुश-पाश-पुस्तक इन चार आयुधों को हाथों में धारण किये हुये हैं, या= जो, (और) बालभानुप्रभा= प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश के समान प्रभा मण्डल है जिनका, (ऐसी) तां=

उस, देवीं= दिव्य माता, त्रिपुरां = त्रिपुरा नाम से प्रसिद्ध (त्रिपुरा शब्द का वर्णन श्लोक संख्या 2 में किया गया है), शिवां= कल्याण प्रदान करनेवाली, (को मैं अपनी) अभीष्टार्थसिद्ध्यै= सकल कामनाओं की प्राप्ति केलिये, हृदि = हृदय में, सदा= निरन्तर, भजे= भजन ध्यान करता हूँ।

व्याख्याः– इस लोक और परलोक के सुखों की कामनावाले मन्द बुद्धिवाले अधिकारी पुरुषों को मन्त्रमयी देवता का चिन्तन करना संभव नहीं है, इसलिये इस श्लोक में माँ भगवती के स्थूल मूर्ति रूपी प्रतीक का वर्णन किया गया है। प्रतीक उपासना के योग्या मूर्तिमयी श्रीभगवती त्रिपुरा के स्वरूप का निरन्तर स्मरण पूर्वक चिन्तन करने से क्रमशः सगुण साक्षात्कार पूर्वक उत्तरोत्तर स्थिति का अधिकार प्राप्त कर अन्त में निर्गुण स्वरूप की अनुभूति अवश्य होगी, यही भजन का वास्तविक लक्ष्य व अन्तिम परिणाम है।।4।।

अब श्री भगवती त्रिपुरा के त्र्यक्षरात्मक बीज (ऐं ह्रीं श्रीं) के प्रथम बीज "ऐं" का वर्णन तीन श्लोकों में किया जा रहा है–

वन्दे वाग्भवमैन्दवात्मसदृशं वेदादिविद्यागिरो
भाषा देशसमुद्भवाः पशुगतास्छन्दांसि सप्तस्वरान्।
तालान्पंचमहाध्वनीन्प्रकटयत्यात्मप्रकाशेन य–
त्तद्बीजं पदवाक्यमानजनकं श्रीमातृके ते परम्।।5।।

भावार्थः– हे श्रीमातृकारूपिणी भगवती! जो वाग्भव बीज चन्द्र बीज के समान है तथा वेद और शास्त्र आदि समस्त विद्या का मूल वाणीरूप है, देशविदेश में उद्भव हुई समस्त भाषा स्वरूप है, पशुपक्षियों की भाषा स्वरूप है, छन्दःशास्त्र में वर्णित अनुष्टुप् आदि छन्दोरूपा है, षड्ज अर्थात् ऋषभ–गान्धार आदि सप्त स्वररूपा है, हंसक–कंदुक–क्रीडा–लघुशेखर–मलय ये 5 तालरूपा है, भैरव– मालकोस–दीपक–मल्हार आदि महाध्वनिरूपा है जो, इस प्रकार संगीत शास्त्र में वर्णित जो अन्य अंग हैं – उन

सब को आत्मप्रकाश से व्यक्तरूप में प्रकट करती है जो, तथा वह जो पद–वाक्य–प्रमाण की भी जननी है उस बीज रूपी कारण श्रेष्ठ माँ भगवती को मैं नमस्कार करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे श्रीमातृके! = श्री शब्द का अर्थ श्लोक संख्या 2 में किया गया है, सब प्रकार के शब्दों के समूह की उत्पत्ति कारिणी (प्रकट करनेवाली), हे माते! ऐन्दवात्मसदृशं = इन्दु अर्थात् चन्द्रमा के संबंधी चन्द्रमण्डल का स्वरूपभूत, अमृत के समान है जो, वाग्भवं= वाणी में विशिष्ट शक्ति पैदा करनेवाला बीजाक्षर ऐंकार है। वेदादिविद्यागिरः= वेद शास्त्र आदि समस्त विद्या के मूल कारण वाणी स्वरूप को जो, देशसमुद्भाः भाषाः= मनुष्य के द्वारा प्रयुक्त देशविदेश में उत्पन्न समस्त भाषाओं को जो, पशुगताः= पशु पक्षी आदि समस्त प्राणियों के द्वारा प्रयुक्त भाषाओं को जो, छन्दांसि = गायत्री अनुष्टप् आदि छन्दों को जो, सप्तस्वरान्= ऋषभ गान्धार आदि सात स्वरों को जो, पंच तालान्= हंसक–कंदुक–क्रीडा–लघुशेखर–मलय इन 5 तालों को जो, महाध्वनीन् = भैरव मालकोस आदि महान् रागों को जो, (और) पदवाक्यमानजनकं= पद अर्थात् व्याकरण एवं वाक्य अर्थात् मीमांसा दर्शन और प्रमाण अर्थात् न्याय दर्शन को, यत् = जो, आत्मप्रसारेण = अपने आपके अनन्त उपाधियों के माध्यम से फैलाते हुये, प्रकटयति = प्रकट करती है, ते= आपके, तत् = उस, परं= श्रेष्ठ, बीजं=बीज ऐंकार को, वन्दे= मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्याः– प्रथम बीज ऐंकार के प्रथम अक्षर ऐ तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) के प्रथम मन्त्रों के प्रथम अक्षरों को मिलाने से बना है। ऋग्वेद का पहला मन्त्र है– ''अग्निमीले पुरोहितम्'' जिसका पहला अक्षर है 'अ', यजुर्वेद का पहला मन्त्र है– ''इषेत्वोर्जेत्वा'' जिसका पहला अक्षर है 'इ' और सामवेद का पहला मन्त्र है– '' अग्न आयाहि वीतये'' जिसका पहला अक्षर है 'अ'। इन तीनों अक्षरों अ, इ, अ को मिलाने से ऐ बनता है, क्योंकि अ+इ के मिलने से 'आद्गुणः' इस पाणिनीय व्याकरण के

सूत्र से गुण होकर 'ए' बना, तत्पश्चात् अ+ए के मिलने से 'वृद्धिरेचि' इस पाणिनीय व्याकरण के सूत्र से वृद्धि होकर 'ऐ' बना है। इस प्रकार बिन्दु रहित वाग्भव बीज बनता है। इससे यह संकेतित है कि तीनों वेद और तन्मूलक सकल शास्त्र इस वाग्बीज ऐं में निहित है जिसे 'वेदादिविद्यागिरः' शब्द से अभिव्यक्त किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में वेदादिविद्याओं को एक श्लोक में संग्रह किया है–

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।। 1.31।।

इस श्लोक का संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार है – यद्यपि वेद अनन्त है "वेदा वै अनन्ताः" तथापि स्वरादि के अनुसार 4 हैं (ऋक् यजुः, साम और अथर्व), स्मृतियां भी बहुत हैं, उनमें से मुख्यतया धर्मशास्त्र (स्मृति) 24 माने गये हैं (मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, अत्रि, वसिष्ठ, आदि), पुराण 18 हैं (जिनको इस प्रकार संकेतित किया है–

"मद्वयं भद्वयं चैव बत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्पृथक्।।"

अर्थात् मत्स्य, मार्कण्डेय–मद्वय, भविष्य, भागवत–भद्वय, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त–बत्रय, वराह, वायु, विष्णु, वामन–वचतुष्टय, अग्नि–अ, नारद–ना, आदित्य=सूर्य–आ, पद्म–प, लिंग, कूर्म और स्कन्द), उपपुराण 18 हैं (गरुड, कालिका, शिव, देवीभागवत, नर्मदा, आदि), न्याय = तर्कप्रधान दर्शन शास्त्र, मीमांसा = श्रुतिप्रधान जैमिनि कृत पूर्वमीमांसा और वेदव्यास कृत उत्तरमीमांसा वेदान्त दर्शन, अंग = वेदांग 6 हैं (शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, ज्येतिष, कल्प और छन्दःशास्त्र)। उक्त समस्त शास्त्रों का बीज है ऐं, और यह वाग्बीज श्रीविद्या के अनेक मन्त्रों में से पंचदशाक्षरी मन्त्र की कादि विद्या के प्रथम कूट का मूल है। इसके अलावा मनुष्यों के द्वारा प्रयुक्त देश विदेश में प्रचलित समस्त भाषाओं और पशु पक्षियों के द्वारा प्रयुक्त समस्त भाषाओं का भी मूल यह

वाग्भव बीज है। शास्त्रों और लोक गीतों में प्रयुक्त अनेक छन्दों, दोहा, सवैया, आदि कविता का स्वरूप भी यह वाग्भव बीज ही है। संगीत में प्रयुक्त 7 स्वर (स, रे, ग, म, प, ध, नि– षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद) तथा 50 तालों सहित 5 महाध्वनि जो 5 प्रकार के बाजों से प्रकट होती हैं, उन सब का मूल वाग्भव बीज ही है। वे 5 प्रकार के बाजे इस प्रकार हैं – 1. वीणा, सारंगी, तम्बूरा आदि, 2. मृदंग, ढोलक, तबला, आदि, 3. शंख, बांसुरी, आदि, 4. झांझ, मंजीरा, झल्लरी, आदि, 5. डमरू, भेरी, दुन्दुभि, आदि। उक्त के अतिरिक्त 54 शैव–वैष्णव–शाक्त आगम, 64 तन्त्र, लौकिक एवं अलौकिक भाषायें सभी को उपलक्षित किया गया है। लेकिन यह सब कैसे हो सकता है? ऐसी आकांक्षा करने पर जवाब देते हैं कि "ऐन्दवात्मसदृशं" अर्थात् चन्द्रमा से जैसे अमृत टपकता है वैसे ही वाग्भव बीज ऐंकार से भी अक्षरों का प्रस्रवण होता है, ऐसा जो वर्णों का उच्चारण करने में मूलकारण वाग्भव बीज है, उसकी उपासना के बल से वेद शास्त्र आदि उक्त समस्त विद्या यावद्विषय सिद्ध होती हैं। प्राचीन ग्रन्थकारों तथा महाकवियों ने इसकी ही उपासना करके माँ भगवती की कृपा प्राप्त कर विश्व में अद्यापि विख्यात हैं।।5।।

त्रैलोक्यस्फुटमंत्रतंत्रमहिमा स्वात्मोक्तिरूपं विना
यद्बीजं व्यवहारजालमखिलं नास्त्येव मातस्तव।
तज्जाप्यस्मरणप्रसक्तसुमतिः सर्वज्ञतां प्राप्य कः
शब्दब्रह्मनिवासभूतवदनो नेन्द्रादिभिः स्पर्धते।।6।।

पाठभेदः– नाप्नोतिशश्वद्।

भावार्थः– हे वाग्भव मातृकारूपिणी माते! जो आपका स्वरूपभूता प्रकाशरूपी बीज है उसमें संपूर्ण व्यवहार समूह है, उसके विना तीनों लोकों में प्रसिद्ध मन्त्र तन्त्र आदि की महिमा कुछ भी नहीं रह जाती है। अर्थात् आपके बीज के सिवा कुछ है ही नहीं। निरन्तर जपने योग्य आपके बीज के स्मरण में जिसकी बुद्धि अनुरक्त हुयी है और शब्द ब्रह्म का अनुसन्धान करता हुआ

मुख है जिसका, ऐसा भक्त सर्वज्ञता को प्राप्त करके इन्द्र आदि देवों के साथ प्रतिस्पर्धा क्यों नहीं कर सकता है? (अर्थात् भक्त आपके बीज मन्त्र का जप करने के बल से इन्द्र आदि देवों को भी निःस्तेज कर सकता है)।

अन्वितार्थः– हे मातः!= हे माते!, तव= आपके, स्वात्मोक्ति रूपं= अपने ही वाङ्मयरूप, यद्= जो, बीजं= वाग्बीज ऐंकार को, विना= (गुरुमुख से प्राप्त कर साधना किये) विना, त्रैलोक्यस्फुट मन्त्रतन्त्रमहिमा= तीनों लोकों में (स्वर्ग, पृथिवी और पाताल के निवासी देवता, मनुष्य और दानवों की अपनी कामना को प्राप्त करने का साधनभूत) स्पष्ट मन्त्र–तन्त्र की महिमा (की गणना), (और) व्यवहारजालमखिलं= संसार के संपूर्ण व्यवहार जाल (लेन देन आदि लौकिक और जप तप आदि पारमार्थिक) नास्त्येव= हो ही नहीं सकता, तद् = उस वाग्बीज के, जाप्यस्मरणप्रसक्तसुमतिः = नियमानुसार जप और निरन्तर स्मरण करने में ही प्रसक्त है शुद्ध बुद्धि जिसकी, और, शब्दब्रह्मनिवासभूतवदनः = शब्दब्रह्म अर्थात् संपूर्ण वेद का सार वाग्बीज ऐंकार सदा निवास कर रहा है जिसके मुख में ऐसा, कः = कौन साधक होगा जो, सर्वज्ञतां = सर्वज्ञता को, प्राप्य = प्राप्त करके, इन्द्रादिभिः= इन्द्रादि देवताओं से, स्पर्धते = स्पर्धा, न = नहीं करेगा, (अर्थात् अवश्य ही वे निस्तेज हो जाते हैं)।

व्याख्याः– इस श्लोक में बालात्रिपुरसुन्दरी के त्र्यक्षरी मंत्र के प्रथम अक्षर वाग्भवबीज ऐंकार को निरन्तर जपने व चिन्तन करने की अतिशय महिमा बतायी गयी है। जिसके जप एवं स्मरण रूपी अनुष्ठान के बल से शुद्ध ब्रह्म में निष्ठा प्राप्त कर मुमुक्षु इन्द्र आदि देवों के वैभव का भी अतिक्रमण करते हैं अर्थात् अशाश्वत वैभव की इच्छा न करके उसे उपेक्षा दृष्टि से देखते हैं। क्योंकि इस प्रसिद्ध वाग्बीज की उपासना किये विना कोई भी साधक तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथिवी, पाताल के निवासी शाप देने व अनुग्रह करने में समर्थ देवता, मनुष्य, दानव को प्रसन्न करने में समर्थ) में स्पष्ट रूप से प्रकट मन्त्र–तन्त्र की महिमा यानि वैभव को प्राप्त नहीं कर सकता है और संसार के संपूर्ण लौकिक और आध्यात्मिक (पारमार्थिक) व्यवहार भी करना संभव नहीं है,

अर्थात् किसी भी कार्य में संतोष जनक फल प्राप्त नहीं कर सकता। यदि कोई साधक गुरु द्वारा दीक्षा के माध्यम से ग्रहण कर पुरश्चरण आदि द्वारा सिद्ध करके नित्य निरन्तर जपता है और अन्य दैनिक व प्राकृतिक कार्य को करते वक्त भी स्मरण करता रहता है उस सद् बुद्धिवाले साधक का शुद्ध बुद्धि में निश्चित रूप से पद आदि सब शास्त्रों का स्फुरण हो जाता है, जिससे वह सर्वज्ञता को प्राप्त करता है। इसलिये ही उसके मुख में संपूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करनेवाली चिच्छक्तिरूपा जगदम्बा भगवती त्रिपुरा निवास करती हैं। जिसके सामर्थ्य से वह इन्द्रादि सभी देवताओं को निस्तेज कर उन्हें भी निग्रह करने में समर्थ हो जाता है।।6।।

वाग्भवबबीज के ऊपर लगी हुयी मात्रा की स्तुति किये हैः

मात्रा याऽत्र विराजतेऽतिविशदा तामष्टधा मातृकां
शक्तिं कुण्डलिनीं चतुर्विधतनुं यस्तत्त्वविन्मन्यते।
सोऽविद्याखिलजन्मकर्मदुरितारण्यं प्रबोधाग्निना
भस्मीकृत्य विकल्पजालरहितो मातः पदं तद्व्रजेत्।।7।

भावार्थः– हे माते! यद्यपि प्रत्येक अक्षर मातृका है तथापि उनका यहाँ सांकेतिक रुप से बता रहे हैं कि मातृका वाग्भव बीज में ऊपर लगी हुयी अत्यन्त स्पष्टरूप से भासित हो रही है, वह मातृका ही अष्टविध मातृका रूप से विभक्त है। उन मातृकाओं की स्वामिनी शक्ति और कुण्डलिनी के चतुर्विध शरीर (स्थूल–सूक्ष्म–कारण–महाकारण) के भेद से आपको ही जो तत्त्वविद् मानता है वह तत्त्ववेत्ता अविद्या से उत्पन्न हुये अनेक जन्मों के समस्त पापकर्मरूपी अरण्य जो संकल्प विकल्प जाल रूप हैं उन सब को ज्ञानाग्नि से भस्मसात् करके अनन्यनिष्ठा के कारण परम पद को प्राप्त करता है।

अन्वितार्थः–हे मातः!= हे माते!, मात्रा= (मुझ वाग्भवबीज ऐंकार के ऊपर लगी हुयी) अनुस्वार रूपी अक्षर, या= जो, अतिविशदा= अत्यन्त विस्पष्ट भासित है, तां मातृकां शक्तिं= उस मातृका शक्ति को, अष्टधा = 8 वर्गों (व्याकरण में प्रसिद्ध) में विभक्त कर उनकी स्वामिनीयों के रूप में आप अपने को ही 8

विशिष्ट शक्तियों के रूप में प्रकट करती है, (तथा) कुण्डलिनीं= अपने कुण्डलिनी स्वरूप को भी, चतुर्विधतनुं= चार प्रकार से इस शरीर में स्थित करती हैं (भ्रूमध्य में सोम कुण्डलिनी, हृदय में सूर्य कुण्डलिनी, मूलाधार में अग्नि कुण्डलिनी और मुलाधार के नीचे वाग्भवाकार त्रिकोण में समष्टि कुण्डलिनी)। (ऐसे) यः= जो, तत्त्ववित्= गुरुमुख से जानने वाला तत्त्वज्ञानी है, सः= वह, प्रबोधाग्निना= ज्ञानरूपी अग्नि से, अविद्याखिलजन्मकर्मदुरितारण्यं= अज्ञान के कारण प्राप्त अनेक जन्मों में अर्जित पाप कर्म रूपी जंगल, अखिलं= संपूर्ण, विकल्पजालं= वासनामय संकल्प–विकल्पों को, भस्मीकृत्य= भस्म करके, तत्= उस, पदं= परम पद को, व्रजेत्= प्राप्त करता है।

व्याख्याः– यहाँ अकार से क्षकार पर्यन्त वर्णों को आठ वर्गों में विभक्त आठ शक्तियों से युक्त कहा गया है। वे 8 वर्ग और उनकी स्वामिनी क्रमशः इस प्रकार है– अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और सवर्ग; वशिनी, कामेश्चरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी और कौलिनी। इनका उरः, कण्ठ, शिर, दान्त, होंठ, तालु, नासिका और जिह्वामूल – ये आठ स्थान व्याकरण शास्त्र में वर्णन किया गया है। ये वर्ण मातृका स्थूल, सूक्ष्म, कारण और समष्टि–चार प्रकार के शरीरों को शुद्ध करने केलिये ही योजित हैं अथवा भ्रूमध्य में सोम कुण्डलिनी, हृदय में सूर्य कुण्डलिनी, मूलाधार में अग्नि कुण्डलिनी और मूलाधार के नीचे वाग्भवाकार त्रिकोण में समष्टि कुण्डलिनी रूप में अन्तःकरण की शुद्धि केलिये ही इस शरीर में स्थित है। जैसे कि वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत नित्याषोडशिकार्णव में कहा गया है–

अकचादि टतोनद्ध पयशाक्षरवर्गिणीम्।
ज्येष्ठांगबाहुपदाग्रमध्यस्वान्तनिवासिनीम्।।

अर्थात् अ, क, च, ट, त आदि से आरम्भ कर प, य, श पर्यन्त अक्षरों के आठ वर्ग स्वरूपिणी पराशक्ति सिर, बाहु आदि से पादाग्र पर्यन्त अष्टांगवाला इस शरीर के मध्य स्थित हृदय में निवास करती है। कुण्डलिनी शक्ति से ही इन समस्त मातृकाक्षरों की उत्पत्ति का वर्णन शारदातिलक नामक ग्रन्थ के प्रथम पटल में स्पष्ट कहा है–

सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्तिं ततो ध्वनिस्मरं तस्मात्स्मरान्निरोधिका।।108।।
ततोऽर्द्धेन्दु स्मृतो बिन्दु स्मरमासीत्परा ततः।
पश्यन्ती मध्यमा वाचि वैखरी शब्दजन्मभूः।।109।।
इच्छाज्ञानक्रियात्माऽसौ तेजोरूपा गुणात्मिका।
क्रमेणानेन सृजति कुण्डलिनी वर्णमालिकाम्।।110।।
अकारादिसकारान्तां द्विचत्वारिंशदात्मिकाम्।
पंचाशद्वारगुणितां पंचाशद्वर्णमालिकाम्।।111।।

अर्थात् उस व्यापक ब्रह्ममयी गुणात्मिका प्रकाशरूपा इच्छाज्ञानक्रियारूपिणी कुण्डलिनी समष्टि मातृकाशक्ति को उत्पन्न किया और उससे क्रमशः ध्वनि, स्मर, निरोधिका, अर्द्धेन्दु, बिन्दु, परा, पश्यन्ती, मध्यमावाणी, वैखरीशब्द तक के तत्त्वों को उत्पन्न किया। वह वैखरी शब्द अकार से लेकर सकार तक कुल 42 अक्षरहोते हुये भी ह्रस्व दीर्घ आदि से 50 वर्णों का समूह हो जाता है। इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति स्वयं को 50 बार अभिव्यक्त कर मातृका स्वरूप को प्राप्त हुयी है। अतः कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान करके अथवा मातृका शक्ति की साधना करके ज्ञानाग्निरूपी प्रकाश के द्वारा मोहरूपी अन्धकार को नष्ट कर सकते है। क्योंकि मातृका शक्ति और कुण्डलिनी शक्ति एक ही है। इसलिये शुद्ध अन्तःकरण की वृत्ति से बारम्बार मातृका शक्ति के वर्णस्वरूप का सम्यक् अभ्यास करके अथवा कुण्डलिनी शक्ति को जगा कर परम पद को प्राप्त करना ही मनुष्य का परम लक्ष्य है। परमपद के विषय में कहा है–

एतस्याः परतः परात्परतरं निर्वाणशक्तेः पदं,
शैवं शाश्वतमप्रमेयमचलं नित्योदितं निर्मलम्।
तद्विष्णोः पदमित्युदन्ति सुधियः केचित्पदं ब्रह्मणः,
केचिद्धंसपदं निरंजनपदं केचिन्निरालम्बनम्।।

अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप के बारे में कुछ विद्वानों का कहना है कि वह विष्णु का पद है जो कि शैव, शाश्वत, अप्रमेय, अचल, निर्मल, नित्यप्रकाश और पर (हिरण्यगर्भ) से भी पर (कारण

ब्रह्म= ईश्वर) के उपाधिभूता इस निर्वाण प्रदायक शक्ति से भी परतर पद है। कुछ अन्य कहते हैं कि वह हंस पद है, कुछ विद्वान् उसे निरंजन पद मानते हैं और कुछ अन्य उसे सर्वालम्ब रहित कहते हैं।।7।।

अब श्री भगवती त्रिपुरा के त्र्यक्षरी मन्त्र के द्वितीय अक्षर कामराज बीज का वर्णन तीन श्लोकों में किया जा रहा है–

तत्ते मध्यमबीजमम्ब कलयाम्यादित्यवर्णं क्रिया–

ज्ञानेच्छाद्यमनन्तशक्तिविभवव्यक्तिं व्यनक्ति स्फुटम्।

उत्पत्तिस्थितिकल्पकल्पिततनु स्वात्मप्रभावेन यत्

काम्यं ब्रह्महरीश्वरादिविबुधैः कामं क्रियायोजितैः।।8।।

भावार्थः– हे अम्बे! अब मैं आपका वह जो सूर्य की कान्ति के समान तेज से युक्त मध्यम अर्थात् द्वितीय बीज है उसकी वन्दना करता हूँ। अपने स्वरूप के प्रभाव से क्रिया, ज्ञान और इच्छा का कारण होकर उत्पत्ति, स्थिति आदि युक्त कल्पों से कल्पित शरीर को स्वीकार करके अनन्त शक्तियों के वैभव को अभिव्यक्त कर स्पष्टरूप से जो बीज क्रियान्वित करता है और सृष्टि आदि क्रिया में योजित बह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि देवता भी जिस बीज की कामना करते हैं क्योंकि उसका अत्यादर से इच्छापूर्वक प्रयोग करने पर ही अपनी–अपनी क्रिया को संपादन करने में वे समर्थ हुये हैं, ऐसा आपका वह मध्यम बीज है। (इससे यह निष्कर्ष निकलता है की मध्यमबीजाक्षर अकारादि समस्त बीजाक्षरों का उद्धार करता है)।

अन्वयार्थः– हे अम्ब!= हे माते!, यत्= जो, आदित्यवर्णं= उगते हुये सूर्य के समान लाल रंग व तेज से युक्त है, क्रियाज्ञाने छाद्यं= क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति और इच्छाशति का आदि कारण है, स्वात्मप्रसारेण = अपने आत्मा कामकलाक्षर रूपी द्वितीयबीज का ही विस्तार करते हुये, उत्पत्तिस्थितिकल्पकल्पिततनु = संसार की उत्पत्ति स्थिति और संहार केलिये वामा ज्येष्ठा और रौद्री का रूप धारण करता है, क्रियायोजितैः = (जगत की उत्पत्ति स्थिति और संहार करने की क्रिया में लगाये गये) ब्रह्मा विष्णु और रुद्र

तथा अन्य देवतागण द्वारा, कामं = कामराज नामक मध्यम बीज की, काम्यं = कामना योग्य जानकर कामना करते हैं, (और जिससे) अनन्तशक्तिविभवव्यक्तिं = अनन्त शक्तियों का वैभव स्पष्ट अभिव्यक्त होता है, ते = आपके, तत् = उस, मध्यमबीजं = कामकलाबीज को, कलयामि = मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्याः– इस श्लोक में द्वितीय बीज का ज्ञान कराके उसकी अतिशय महिमा का वर्णन किया गया है और यह दर्शाया गया है कि मुख्य तीन प्रकार की शक्ति – ज्ञान, इच्छा, क्रिया के द्वारा समस्त बीजाक्षरों का उद्धार किया जा सकता है। तथा काम बीज की देवता परमेश्वरी के उत्पत्ति, स्थिति आदि क्रियाओं केलिये अपने कल्पित वामा ज्येष्ठा रौद्री – इन तीन विग्रह में विद्यमान अनन्त वैभव को भी दर्शाया है। अनन्तवैभव इसलिये कहा गया है कि ज्ञान इच्छा क्रिया इन तीन शक्तियों से केवल वामा ज्येष्ठा रौद्री रूप से विशिष्ट ब्रह्मा विष्णु महेश्वर के शरीर धारण कर उत्पत्ति स्थिति लय रूपी कार्य को सिद्ध नहीं कर रही है, अपितु सोम सूर्य अग्नि–3 अ उ म–3 लोक–3 पीठ–3 लिंग–3 काल –3 वेद– 3 श्रौत अग्नि– 3 इत्यादि समस्त त्रिकों के रूप में भी अभिव्यक्त है (इसका विस्तृत वर्णन 22वें श्लोक में किया जायेगा)। इसलिये कलयामि पद का अर्थ इस प्रकार भी लिया गया है – ईकार को ककार और लकार से युक्त करता हूँ। अर्थात् ईकार में क और ल अक्षर को जोडकर बिन्दु से भी युक्त कर देने पर बालात्रिपुरसुन्दरी के द्वितीय बीज यानि त्रिबिन्दुरूप कामकलाबीज क्लीं का मैं संपादन करता हूँ। ब्रह्महरीश्वरादिविबुधैः पद में आदि शब्द से इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, सूर्य आदि त्रिपुरासुन्दरी के उपासकों का संकेत करके शाक्त संप्रदाय की परम्परा को दर्शाया है। जैसे कि कहा भी है–

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।।
क्रोधभट्टारकश्चापि दत्तात्रेयो मुनिस्तथा।
एते प्रसिद्धा जगति त्रिपुराया उपासकाः।।

अर्थात् शिव, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, मन्मथ, इन्द्र, स्कन्द, कुबेर, मनु, अगस्ति, लोपामुद्रा, दुर्वासा, दत्तात्रेय आदि जगत में

प्रसिद्ध देवता और ऋषियों की परम्परा से यह श्रीविद्या आयी है। इसी प्रकार श्रीलघुस्तवराज में भी कामराजबीज की महिमा का वर्णन किया है–

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलम्।
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि।।3।।
आख्यानं प्रतिपर्वसत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः।
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम्।।4।

अर्थात्: हे नित्ये! जो आपके दूसरे, ककार और लकार रहित, केवल ईकार रूपी कामराज नामक मन्त्राक्षर को एकादशी आदि प्रत्येक पर्व के सभी कर्म विधि के अनुसार अनुष्ठान करनेवाले एवं सत्य और तप का पालन करनेवाले तथा कथाओं को कहनेवाले द्विज अपने कर्म के आरम्भ में प्रणव यानि ओंकार के समान श्रद्धा से युक्त होकर स्पष्ट उच्चारण करते हैं उस कामराज को सारस्वत मन्त्र करके इस धरती पर विद्वान् होने पर भी कोई अत्यन्त विरल ही जानता है।।8।।

कामान्कारणतां गतानगणितान्कार्यैरनन्तैर्मही–
मुख्यैः सर्वमनोगतैरधिगतान्मानैरनेकैः स्फुटम्।
कामक्रोधसुलोभमोहमदमात्सर्यादिषट्कं च यत्
बीजं भ्राजयति प्रणौमि तदहं ते साधु कामेश्वरी।।9।।

पाठभेदः–कार्यैरनेकैर्मही।

भावार्थः– हे कामेश्वरी! पृथिवी प्रमुख अनन्त कार्य के द्वारा अगणित कामनाओं की कारणता को प्राप्त हुआ है जो सभी के मन में विद्यमान अनन्त वासनाओं को अनेक प्रमाणों के द्वारा स्पष्ट प्रकाशित करती है जो, और काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, मात्सर्य–इन छः शत्रुओं को भी मित्र बना देता है जो, आपके उस दूसरे श्रेष्ठ बीज स्वरूप को मैं अत्यादर पूर्वक प्रणाम करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे कामेश्वरी! हे कामकूट स्वामिनी! कारणतां गतान्– करणत्व को प्राप्त हुये अर्थात् तत्तत्कार्यों के अनुकूल

होते हुये, महीमुख्यैः= पृथिवी जिनमें मुख्य है (पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश), ऐसे अनन्तैः=असंख्य, कार्यैः=कार्यों के द्वारा, अगणितान् =गणना रहित यानि असंख्य, सर्वमनोगतान् =सभी प्राणियों के चित्त में विद्यमान, कामान् =कामनाओं को, जिन्हें अनेकैः =अनेक, मानैः =प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा, अधिगतान् = जाना गया है उनको, भ्राजयति=प्रकाशित, और कामक्रोधसुलोभमोह मदमात्सर्यादिषट्कं= काम, क्रोध, सुलोभ, मोह, मद और मात्सर्य रूपी छः शत्रुओं को, भ्राजयति=प्रकाशित अर्थात् काम आदि शत्रुओं को नष्ट करता है अथवा मित्र बना देता है, ते= आपका, यद्= जो, साधु= श्रेष्ठ स्वरूप है, तत्= उस, बीजं= बीज को, अहं= मैं, प्रणौमि = नमस्कार करता हूँ।

व्याख्याः– कामेश्वरी शब्द से तीन अर्थो को यहाँ संकेतित किया है–काम्यन्तेऽभिलष्यन्ते योगिभिर्या सा कामा तेषामीश्वरी अर्थात् योगियों के द्वारा अभिलषित ऋद्धि, सिद्धि, समाधि, आदि की स्वामिनी अथवा कामेश्वर परमशिव की अनन्या शक्ति अथवा कामकूट की अधिष्ठात्री देवी। मानैरनेकैः शब्दों से प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द(आगम), उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि आदि प्रमाणों के साथ वेद, स्मृति, पुराण आदि समस्त शास्त्रों को लक्षित किया है। यद्यपि भ्राजयति शब्द का अर्थ प्रकाशित करना अथवा दीप्त करना है तथापि "धातूनामनेकार्थत्वात्" इस संस्कृत व्याकरण के सिद्धान्त के अनुसार नष्ट करना अथवा बदलना अर्थ में प्रयोग किया गया है। क्योंकि कामक्रोधसुलोभमोहमदमात्सर्यादिषट्क साधक केलिये शत्रु हैं, इसलिये जब तक साधक इनको जीत नहीं लेता अर्थात् इन्हें मित्र बना नहीं लेता या नष्ट नहीं कर लेता (इनका गुलाम न होकर इन पर अपना अधिकार जमा नहीं लेता) तब तक साधक योगी को ज्ञान नहीं हो सकता। यह केवल द्वितीय बीज की उपासना से ही संभव है। इस प्रकार इस श्लोक में विशेषतः द्वितीय बीज के द्वितीय अक्षर का और सामान्य तौर पर तीनों अक्षरों का उद्धार किया गया है तथा द्वितीय बीज के सामर्थ्य का वर्णन करते हुये यह श्लोक दर्शाता है कि मनोगत अनेक कामनाओं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छः शत्रुओं को भी नष्ट कर देने में द्वितीयबीज अत्यन्त समर्थ है।।9।।

यद्भक्ताखिलकामपूरणचणस्वात्मप्रभावं महा

जाड्यध्वान्तविदारणैकतरणिज्योतिःप्रबोधप्रदम्।

यद्वेदेषु च गीयते श्रुतिमुखं मात्रात्रयेणोमिति

श्रीविद्ये तव सर्वराजवशकृत्तत्कामराजं भजे ।।10।।

भावार्थः– हे श्रीविद्ये! जो भक्तों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने में स्वभाव से समर्थ है, महान घोर अन्धकार रूपी अज्ञान को नष्ट करने में समर्थ है, सूर्य प्रकाश के समान ज्ञान को देने वाला है और जो वेदों में तीन मात्राओं के द्वारा ओंकार के रूप में श्रुति का मुख अर्थात् वेद पाठ के आरम्भ में गाया जाता है ऐसे आपके उस कामराज बीज स्वरूप जो समस्त राजाओं को भी वशीभूत करता है उसकी मैं उपासना करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे श्रीविद्ये!= हे त्रिपुरसुन्दरी!, भक्ताखिलकाम पूरणचणस्वात्मप्रभावं= भक्तों के मन में विद्यमान संपूर्ण कामनाओं को संपादन करने में कामकलाबीज अपने स्वरूप से ही समर्थ है क्योंकि वह, महाजाड्यध्वान्तविदारणैकतरणिज्योतिःप्रबोधप्रदम् विशाल एवं घोर अन्धकार रूपी अज्ञान को नष्ट करने अव्यभिचरित सूर्य के प्रकाश के समान ज्ञान को देनेवाला है, = और, वेदेषु= वेदों में, यत्= जो, मात्रात्रयेण= तीनमात्राओं द्वारा, ओमिति= ओं इस शब्द के रूप में, श्रुतिमुखं= वेदों पाठ के आरम्भ में, गीयते= उच्चारण किया जाता है, तथा सर्वराजवशकृत्= समस्त राजाओं को अपने वश में कर लेनेवाला है, ऐसा, तव= आपके, तत्= उस, कामराजं= कामराज बीज का भजे= मैं भजन यानि उपासना करता हूँ।

व्याख्याः– भगवती कामेश्वरी के कामराज बीज का ज करने वाले भक्त जनों के समस्त मनोरथ को पूर्ण करने में य दूसरा बीज अपने स्वरूप से ही समर्थ है और जैसे समस्त वि विशाल एवं घोर अन्धकार से आवृत है उसी प्रकार अज्ञान आपका स्वरूप भी आवृत्त है। अतः जैसे अन्धकार को सूर्य

प्रकाश नष्ट करता है वैसे ही ज्ञान देनेवाला यह कामराज बीज भी अज्ञान को नष्ट कर देता है। चारों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) वेदों में मात्रात्रय अर्थात् अ उ म के द्वारा ओं इस शब्द के रूप से जिसका वर्णन है और जिसे वेदों के पाठ के आरम्भ में उच्चारण किया जाता है, वह यह कामकजाबीज ही है। क्योंकि कामकला बीज भी रक्त, शुक्ल और मिश्र त्रिबिन्दुरूप है और यह तीनों बिन्दु सूर्य, चन्द्र और अग्नि रूप हैं। तात्पर्य यह है की ओंकार और कामकला बीज में भेद नहीं है, दोनों एक ही वस्तु है। इसलिये इस बीज को ही वेदों में वैदिक प्रणव रूप कहा गया है, अतः जब संपूर्ण ब्रह्माण्ड ही उसमें कल्पित होने से उसके अधीन रहता है तब समस्त राजाओं को अपने वश में कर लेता है तो इसमें क्या आश्चर्य है। इस श्लोक में रोचक फल बताया है, इसलिये ऐसी इच्छा रखनेवाले भक्तों की इच्छा भी द्वितीय बीज की भक्ति करके माँ भगवती को प्रसन्न करने से पूर्ण होती है। हे श्रीविद्ये इस संबोधन से यह स्पष्ट किया जा रहा है कि श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ही केवल मोक्षदात्री है क्योंकि केवल विद्या शब्द से अन्य नौ महाविद्याओं में से किसी भी महाविद्या को लिया जा सकता है किन्तु "श्री" शब्द के साथ विद्या शब्द का प्रयोग होने पर अर्थात् 'श्रीविद्या' शब्द से केवल महात्रिपुरसुन्दरी को ही लिया जाता है। अतः मोक्षदायिनी श्रीविद्या के बारे में ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है–

> इति मन्त्रेषु बहुधा विद्याया महिमोच्यते।
> मोक्षैकहेतुर्विद्या तु श्रीविद्या नात्र संशयः।।

अर्थात् मन्त्रों के विषय में बहुत प्रकार से महिमा गायी गयी है किन्तु मोक्ष की अव्यभिचारिकारणीभूता विद्या तो श्रीविद्या ही है, इसमें कोई संशय नहीं है।।10।।

अब 11 वें श्लोक में भगवती त्रिपुरा के तीसरे बीज का उद्धार कर उसकी कामकलासाम्यता, ब्रह्मात्मकता और चिद्रूपता का विवेचन दर्शाया गया है और 15 वें श्लोक तक व्यष्टि –

समष्टिरूप से विशेष वर्णन किया है–

यत्ते देवि तृतीयबीजमनलज्वालावलीसंनिभं
सर्वाधारतुरीयबीजमपरब्रह्माभिधाशब्दितम।
मूर्धन्यान्तविसर्गभूषितमहौकारात्मकं तत्परं
संविद्रूपमनन्यतुल्यमभितः स्वान्ते मम द्योतताम्।।11।।

पाठभेदः– सर्वधारतुरीयबीजपरमब्रह्माभिधाशब्दितम्। महौंकारात्मकं।

भावार्थः– हे देवी! आपके तृतीय बीज अग्नि की ज्वाला की पंक्ति के समान दीप्तीमान् तृतीय शक्ति है। संपूर्ण विश्व के आधार भूत आपकी तुरीय शक्ति को ही अपर ब्रह्म नाम से भी कहा गया है (पाठभेद के अनुसार पर ब्रह्म नाम से कहा गया है)। ऊष्माक्षरों में परिगणित (शषसर् प्र.सू 13 में) मूर्धन्य ष के अन्त में स्थित वर्ण 'स' से युक्त महान 'औ' कार जिसके अन्त में " : " विसर्ग से विभूषित = 'सौः' है जिसका स्वरूप (पाठभेद के अनुसार त्रिबिन्दु रूप ओंकार) और जिसकी महिमा की तुलना किसी भी अन्य वस्तु से नहीं की जा सकती ऐसे स्वयं प्रकाश स्वरूप आपका तृतीय बीज व तुरीय शक्ति सब प्रकार से मेरे हृदय में सदा प्रकाशित हो।

अन्वितार्थः– हे देवि!= हे दीप्तिमयी माते!, यत्= जो, ते= आपका, तृतीयबीजं= तृतीय बीज, अनलज्वालावलीसंनिभं= अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं की पंक्ति के समान तेज युक्त है। सर्वाधारतुरीयबीजम्= संपूर्ण विश्व का आधार भूत तुरीय यानि अन्तिम बीज को, अपरब्रह्माभिधाशब्दितम्= अपर ब्रह्म नाम से कहा है (पाठभेद के अनुसार पर ब्रह्म नाम से कुछ लोगों ने कहा है), मूर्धन्यान्तविसर्गभूषितमहौकारात्मकं= ऊष्माक्षरों में पठित (शषसर् प्र.सू 13 में) मूर्धन्य 'ष' का अन्त में स्थित वर्ण 'स' से युक्त महान 'औ' कार जिसके अन्त में " : " विसर्ग से विभूषित = 'सौः' है जिसका स्वरूप (पाठभेद के अनुसार मूर्धन्यान्त= मस्तक का अन्त= एक बिन्दु और विसर्ग= दो बिन्दु, अतः

कुलयोग त्रिबिन्दु रूप ओंकार) और अनन्यतुल्य महिम= जिसकी महिमा का तुलना किसी भी अन्य वस्तु से नहीं की जा सकती, ऐसा, संविद्रूपं= स्वयं प्रकाश स्वरूप, ते= आपका, परं= श्रेष्ठ, तुरीयबीजं= तुरीय बीज है, तत्= वह, मम= मेरे, स्वान्ते= हृदय में, द्योतताम्= प्रकाशित होवे।

व्याख्याः— तृतीयबीज और तुरीयबीज सौः का वर्णन करते हैं। वामकेश्वरतन्त्र के नित्याषोडशिकार्णव में लिखा है—

"यदेकादशमाधारं बींज कोणत्रयोद्भवं।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते।।6।।"

अर्थात् जिस मातृका का ग्यारहवाँ अक्षर ऐकार के आकार तीन कोणों से उत्पन्न है वह श्रीविद्या का तृतीय कूट यानि तृतीय बीज तेज पुंज से परिपूर्ण है। यह जो तुरीय बीज संसार का आधारभूत है, उसमें आज भी यह संपूर्ण जगत दिखाई दे रहा है। जो आनन्द भैरव के मत में बिन्दु सहित है, दक्षिणामूर्ति मत में विसर्ग युक्त है और हयग्रीव मत में बिन्दु एवं विसर्ग दोनों से युक्त है। इसलिये इस बिन्दु त्रय युक्त परा बीज अनिर्वाचाच्या तुरीय शक्ति की महिमा अनन्त है जिसका वर्णन अपर ब्रह्म नाम से किया गया है (पाठभेद के अनुसार कुछ लोगों ने पर ब्रह्म कहा है)। इसलिये इस श्लोक में संकेत मात्र से दर्शाये हुये ततीय बीज और तुरीय बीज का सांकेतिक विवेचन ही करते हुये स्वयं प्रकाश, अनन्यतुल्य आदि शब्दों से इनकी सर्वोत्कृष्टता का वर्णन किया है।

"अष्टमस्य तृतीयन्तु चतुर्दशसमन्वितम्।
दण्डकुण्डलमेतद्धि सारस्वतमुदाहृतम्।।"

(सनत्कुमार संहिता)

अर्थात् स्वर वर्णो का चौदहवाँ अक्षर औकार से युक्त आठवें वर्ग का तीसरा अक्षर माने शवर्ग का (श ष स ह) तीसरा सकार यानि सौ जब दण्ड माने अनुस्वार और कुण्डल माने विसर्ग से समन्वित हो यानि सौंः तब उसे सारस्वत बीज कहते हैं। तीनों बीजों के बारे में हादि विद्या के अनुसार कहा है—

"अधरो बिन्दुमानाद्यो ब्रह्मोन्द्रस्थः शशीयुतः।

भृगुसर्गाद्यः सौकारो मनुस्तार्तीयमीरितम्।।''

अर्थात् प्रथमकूट ह युक्त यानि हसकलह्रीं, द्वितायकूट क एवं ल युक्त यानि कएईहलह्रीं, तृतीयकूट स युक्त यानि सकलह्रीं और तृतीय से लक्षित तुरीय बीज ''सौः'' है।।11।।

अब बीजात्मिका माँ भगवती को प्राप्त करके अत्यन्त संक्षिप्त बीजरूप से नामोच्चार विधियुक्त जपादि अनुष्ठान करनेवाले उपासक के यत्नानुसार यथोक्त फल देनेवाली बीजरूपी माँ भगवती को नमन करते हैं–

सर्वं सर्वत एव सर्गसमये कार्येन्द्रियाण्यन्तरा

तत्तद्दिव्यहृषीककर्मभिरियं संव्यश्नुवाना परा।

वागर्थव्यवहारकारणतनुः शक्तिर्जगद्रूपिणी

यद्बीजात्मकतां गता तव शिवे तं नौमि बीजं परं।।12।।

भावार्थः– हे शिवे! सृष्टिकाल में उन उन उत्पाद्य वस्तुओं के अनुकूल दिव्य और श्रेष्ठ कर्मों को निमित्त करके सभी को सब प्रकार से कार्य करने के अनुकूल इन्द्रियों, यह मध्यमावाक् और सम्यक् व्याप्त करनेवाली परा वाणी, समस्त शब्द एवं अर्थ के सम्बन्धपूर्वक व्यवहार यानि वैखरी के योग्य कारण शरीर पश्यन्ती तथा जो आपकी जगदाकार शक्ति की बीजात्मकता को प्राप्त है, उस परम बीज स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे शिवे!= हे कल्याणरूपिणी माते!, सर्गसमये = सृष्टि काल में, तत्तद्दिव्यहृषीककर्मभिः= उन उन उत्पाद्य वस्तुओं के अनुकूल दिव्य और श्रेष्ठ कर्मों को निमित्त करके, सर्वं = सभी को, सर्वतः= सब प्रकार से, कार्येन्द्रियाणि= कार्य करने के अनुकूल इन्द्रियों, इयं= यह, अन्तरा= मध्यमावाक्, संव्यश्नुवाना = सम्यक् रूप से व्याप्त करनेवाली, परा= परावाक्, वागर्थव्यवहार कारण तनुः= समस्त शब्द एवं अर्थ के सम्बन्धपूर्वक व्यवहार यानि वैखरीवाक् के योग्य कारण शरीर पश्यन्तीवाक्, तथा यद्= जो, तव= आपके, बीजात्मकतां= जगत की कारणरूपता को, गता = प्राप्त है, तं= उस, परं= परम, बीजं= बीज को, नौमि= मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्याः— इस श्लोक में दर्शाया गया है कि परा शक्ति ही संपूर्ण शब्द और अर्थ का कारण है इसलिये परा वाणी अव्यक्त है और वह चारों प्रकार की वाणी का मूल बीज है। उसी में समस्त प्रकार के व्यवहार सूक्ष्मरूप से व्याप्त है। जैसे वृक्ष के बीज में वृक्ष की शाखा, पत्र, पुष्प आदि प्रच्छन्नरूप से अदृश्य रहते है, उसी तरह बीजमन्त्र में जगत् का स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप अदृश्य रहता है।।12।।

इस श्लोक में बता रहे हैं कि जगत के संपूर्ण स्थावर और जंगम पदार्थ एवं देव—मनुष्य—असुर आदि में चैतन्य रूप से स्थिरता पूर्वक स्थित बीज मन्त्र के निरन्तर स्मरण करने से भगवती स्वयं प्रकट होती है—

अग्नीन्दुद्युमणिप्रभंजनधरानीरान्तरस्थायिनी
शक्तिर्ब्रह्महरीशवासवमुखामर्त्यासुरात्मस्थिता।
सृष्टस्थावरजंगमस्थितमहाचैतन्यरूपा च या
यद्‌बीजस्मरणेन सैव भवती प्रादुर्भवत्यम्बिके।।13।।

भावार्थः— हे अम्बिके! अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश में स्थित होकर रहनेवाली और ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र, वासव आदि प्रमुख देवताओं, मनुष्यों तथा असुरों में आत्म रूप से स्थित रहनेवाली तथा आप ही से उत्पन्न स्थावर—जंगम वस्तु मात्र में चैतन्य रूप से स्थित रहनेवाली हैं, वही आप भगवती केवल बीज मंत्र का नित्य निरन्तर स्मरण करने मात्र से प्रकट होकर प्रत्यक्ष होती है।

अन्वितार्थः— हे अम्बिके!= हे सबका पालन करनेवाली!, यद् बीजस्मरणेन = जिस बीज के स्मरण करने से, या= जो, शक्तिः = शक्ति, अग्नीन्दुद्युमणिप्रभंजनधराम्बरस्थायिनी = अग्नि चन्द्र, सूर्य, वायु, पृथिवी, जल और आकाश में स्थायी रूप से रहनेवाली है, ब्रह्महरीशवासवमुखामर्त्यासुरात्मस्थिता= ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वसुगण आदिप्रमुख देवताओं; मनुष्य और असुरों में आत्मरूप से स्थित, च= और, सृष्टस्थावरजंगमस्थितमहाचैतन्यरूपा= उत्पन्न किये गये स्थावर और जंगम यानि चराचर में स्थित चैतन्य है

रूप जिसका ऐसी, सैव= वही, भवती= भगवती, प्रादुर्भवति= प्रकट होती है।

व्याख्याः– हे अम्बिके संबोधन में प्रयुक्त अम्बिका शब्द का वर्णन ललितासहस्रनाम के भाष्य में इस प्रकार लिखा है–" जगन्माता भारतीपृथ्वीरुद्राण्यात्मिकेच्छाज्ञानक्रियाशक्तिसमष्टिरम्बिके त्युच्यते" अर्थात् भारती पृथिवी और रुद्राणी स्वरूपा इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तियों की समष्टि ही जगन्माता अम्बिका है। अमरकोश में भी कहा है–

"अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानि चण्डिका अम्बिका" (1.1.37) । बीजमन्त्र को निरन्तर जपने से ही देवी देवता मनुष्य असुर गन्धर्व आदि उत्पन्न किये गये चराचर ही नहीं बल्कि सृष्टि को पैदा करनेवाला ब्रह्मा, सृष्टि के पालनकर्ता विष्णु और सृष्टि के संहारकर्ता महादेव भी अपने अपने कार्य करने की शक्ति प्राप्त करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आप की प्रेरणा से ही सभी कार्य कर रहे हैं तथा आपकी ही शक्ति से सब का अस्तित्व है। जैसे कि अम्बास्तव में कहा है–

"त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं, त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वं। त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा, निस्सारमेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात्।।"

अर्थात् चन्द्र में अमृतमयी चन्द्रिका, तिग्मरुचि में रुचि, पुरुष में जीवन शक्ति, हवा में बल, जल में स्वाद, और अग्नि में उष्णता आप ही हैं। क्योंकि यदि आप न हो तो ये सब सार हीन ही हैं। अर्थात् यहां यह दर्शाया गया है कि माँ भगवती अम्बिका के बीज मन्त्र में ऐसी अपूर्व शक्ति है कि जो तन्मयता से नित्य निरन्तर बीज मन्त्र का जप करेगा वह माँ भगवती का साक्षात्कार करने में समर्थ हो जायेगा।।13।।

इस श्लोक में यह दर्शाया गया है कि ब्रह्मा, विष्णु, आदि देवता और ब्रह्मनिष्ठा को प्राप्त योगी भी माँ का निरन्तर ब्रह्म रूप से ध्यान–भजन करते हैं–

स्वात्मश्रीविजिताजविष्णुमघवश्रीपूरणैकव्रतं
सद्विद्याकविताविलासलहरीकल्लोलिनीदीपकम्।

बीजं यस्त्रिगुणप्रवशत्तिजनकं ब्रह्मेति यद्योगिनः
शान्ताः सत्यमुपासते तदिह ते चित्ते दधे श्रीपरे।।14।।

भावार्थः– हे श्रीपरे! अपने ही स्वाभाविक ऐश्वर्य से संसार को जीते हुये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवताओं को श्री अर्थात् पराक्रम, शोभा, लक्ष्मी आदि से पूर्ण करना ही एक मात्र व्रत है जिनका और सद्विद्या, कविता, काव्य आदि के विस्तार रूपी लहरों से उत्पन्न आनन्द को प्रकाशित करनेवाला तथा सत्त्व आदि गुणों में प्रवृत्ति के जनक हैं जो ऐसे आपके बीज मन्त्र की शान्त भाव को प्राप्त योगीजन सत्य ब्रह्म रूप से उपासना करते हैं, आपक उस बीज मन्त्र को मैं चित्त में नित्य धारण करता हूँ।

अन्वितार्थः–हे श्रीपरे!=हे सर्वोत्कष्ट ऐश्वर्यवाली माते!, स्वात्मश्रोविजिताजविष्णुमघवश्रीपूरणैकव्रतं=अपने ही स्वाभाविक ऐश्वर्य से संसार को जीते हुये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवताओं को श्री अर्थात् पराक्रम, शोभा, लक्ष्मी आदि स पूर्ण करना ही एक मात्र व्रत है जिनका, सद्विद्याकविताविलासलहरीकल्लोलिनीदीपकम्= सद्विद्या, कविता, काव्य आदि के विस्तार रूपी लहरों से उत्पन्न आनन्द को प्रकाशित करनेवाला, त्रिगुणप्रवृत्तिजनकं= सत्त्व आदि तीनों गुणों में प्रवृत्ति का जनक, यः= जो, बीजं= पराबीज है, यद्= जिसे, शान्ताः= इन्द्रियों को वश में किये हुये, योगिनः= योगीजन, सत्यं= शाश्वत, ब्रह्मेति = ब्रह्म ऐसे, उपासते= उपासना करते हैं, तद्= उस, ते= आपके पराबीज को, चित्ते= अपने चित्त में, दधे = मैं धारण करता हूँ।

व्याख्याः–अपने स्वरूपभूता पराबीज के सामर्थ्य से जीत लिये गये बह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि सभी को सब प्रकार का ऐश्वर्य देने का ही एकमात्र व्रत है जिनका ऐसे आपके उस पराबीज के अनुष्ठान से सब विद्यायें, कवित्व शक्ति आदि साधक के ह्रदय में स्वतः प्रकाशित होने लगते हैं। इसलिये आज भी देखा जाता है कि संस्कृत भाषा में पद्यमय ग्रन्थ के रचनाकार अधिकतर शक्ति के उपासक होते हैं। कालोपनिषद् में कहा भी है–

"अन्तः शाक्तः बहिः शैवो व्यवहारे वैष्णववदाचरेत्"

विद्वान् कवि को भीतर से शक्ति का उपासक होना

चहिये, बाहर से शैव किन्तु व्यवहार यानि आचरण वैष्णव जैसा शुद्ध एवं पवित्र होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि निरन्तर ध्यान में स्थित होकर बीज मन्त्र का मन्त्रगत देवता के साथ अभेद रूप से चिन्तन कर माँ भगवती का साक्षात्कार करना चाहता हूँ – यही हर व्यक्ति की प्रार्थना होनी चाहिये।।14।।

अब तीनों बीज मन्त्रों को अलग–अलग जपने का और तीनों को मिलाकर जपने का फल बता रहे हैं–

एकैकं तव मातृके परतरं संयोगि वा योगि वा
विद्यादिप्रकटप्रभावजनकं जाड्यान्धकारापहम्।
यन्निष्ठाश्च महोत्पलासनमहाविष्णुप्रहर्त्रादयो
देवाः स्वेषु विधिष्वनन्तमहिमस्फूर्तिं दधत्येव तत्।।15।।

भावार्थः– हे मातृकारूपिणी भगवती! आपका एक–एक बीज पर से भी परतर है, अतः वे संयुक्त हों अथवा पृथक्–पृथक् हों तो भी उपासक के हृदय में विद्या आदि के प्रत्यक्ष प्रभाव का जनक है और घोर अन्धकार रूपी अज्ञान को नष्ट करनेवाला है। क्योंकि उपास्य के रूप में आपको ही ग्रहण कर आपके उस बीज मन्त्र को जपने के कारण महान कमल पर आसीन बह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि देवता भी अपने–अपने कार्य को करने के लिये अनन्त महिमा सहित स्फूर्तिरूपी उस बीज को सदा धारण किये हुये हैं।

अन्वितार्थः– हे मातृके= हे वर्णस्वरूपिणी माते!, तव= आपका, एकैकं=एक एक बीज भी हों, परतरं= पर से भी परतर है, इसलिये वे संयोगि= संयुक्त हा, वा= अथवा, योगि=पृथक् पृथक् हो, वा= तो भी, विद्यादिप्रकटप्रभावजनकं = उपासक के हृदय में विद्या आदि के प्रत्यक्ष प्रभाव का जनक है, तथा जाड्यान्धकारापहम्= घोर अन्धकार रूपी अज्ञान को नष्ट करने वाला है। च= और, यन्निष्ठाः= जिस बीजाक्षर को निष्ठा यानि श्रद्धा पूर्वक निरन्तर स्मरण करनेवाले, महोत्पलासनमहाविष्णु प्रहर्त्रादयः= महान कमल पर आसीन बह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि, देवाः= देवता भी, स्वेषु= अपने अपने, विधिषु= कार्य को करने

में समर्थ होने केलिये, अनन्तमहिमस्फूर्ति = अनन्त महिमा सहित स्फूर्तिरूपी, तत्= उस बीज को, दधत्येव= सदा धारण किये हुये हैं।

व्याख्याः– नित्याषोडशिकार्णव में कहा है––

''यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्धते नरः।
रविताक्ष्र्यकन्दर्पशंकरानलविष्णुभिः।।'

अर्थात् आपके बीजाक्षर के एक अक्षर मात्र के सिद्ध होने से मनुष्य यानि उपासक सूर्य, गरुड, कामदेव, शंकर, अग्नि, विष्णु आदि के साथ स्पर्धा करने में समर्थ हो जाता है। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि बीज मन्त्र का जप–ध्यान करने से माँ भगवती सब की इच्छाओं को पूर्ण करती है। इस प्रकार भगवती त्रिपुरा के बीज मन्त्रों का उद्धार और महिमा का वर्णन किया गया है।।15।।

अब वाग्भव, कामराज और शक्ति इन तीनों बीजों का दूसरे प्रकार से भी वर्णन कर रहे हैं–

इत्थं त्रीण्यपि मूलवाग्भवमहाश्रीकामराजस्फुर–
च्छक्त्याख्यानि चतुःश्रुतिप्रकटितान्युत्कृष्टकूटानि ते।
भूतर्तुश्रुतिसंख्यवर्णविदितान्यारक्तकान्ते शिवे
यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थितिध्वंसकृत्।16।

भावार्थः– हे! जिसके चारों ओर लालिमायुक्त कान्ति देदीप्यमान हो ऐसी माते! हे कल्याणरूपिणी माते! जो व्यक्ति चारों वेदों द्वारा प्रकाशित अत्यन्त उत्कृष्ट तीन कूट – मूलवाग्भव, महान श्रीकामराज और स्फुरच्छक्ति नाम से सुप्रसिद्ध आपके तीनों बीजों को इस प्रकार (उक्त प्रकार) से भूत (5=कएईलह्रीं), ऋतु (6=हसकहलह्रीं) और श्रुति (4=सकलह्रीं) अर्थात् 15 वर्णों से विदित को जानता है वही संपूर्ण जगत के सृष्टि, स्थिति और ध्वंस का कर्ता हो जाता है।

अन्वितार्थः–हे आरक्तकान्ते= हे प्रातः कालीन उगते सूर्य के समान लालरंग युक्त कान्ति से शोभायमान माते! हे शिवे=

हे कल्याण स्वरूपे "शिवा भद्राणी रुद्राणी" (अमरकोशः 1.4.25), ते= आपके, चतुःश्रुतिप्रकटितानि= चारों वेदों द्वारा प्रकाशित, भूतर्तुश्रुतिसंख्यवर्णविदितानि= भूत (5=कएईलह्रीं), ऋतु (6=हसकहलह्रीं) और श्रुति (4=सकलह्रीं) अर्थात् 15 वर्णों से विदित, मूलवाग्भवमहाश्रीकामराजस्फुरच्छक्त्याख्यानि= मूलवाग्भव महानश्रीकामराज और स्फुरच्छक्ति नाम से सुप्रसिद्ध, इत्थं= उक्त प्रकार से, उत्कृष्टकूटानि= अत्यन्त श्रेष्ठ, त्रीणि= तीनों कूटों को, यः= जो, जानाति= जानता है, सः= वह, एव= ही, सर्वजगतां= संपूर्ण जगत का, अपि= भी, सृष्टिस्थितिध्वंसकृत्= सृष्टि, स्थिति और ध्वंस का कर्ता हो जाता है।

व्याख्याः– चारों वेदों में प्रकाशित है पंचदशीमन्त्र, जैसे अथर्ववेद के त्रिपुरोपनिषद् के 8वें मंत्र में कहा है–

"कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला माया या च पुरूच्येषा विश्वमाताऽऽदिविद्या।।"

अर्थात् काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि (ल), गुहा (ह्रीं), हसा (ह स), मातरिश्वा (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं), सकला (स क ल), माया (ह्रीं) यह पंचदशाक्षरी मन्त्र विश्वमाता और आदिविद्या है। ऋग्वेद में–"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" अर्थात् शिव ही अपनी माया से अनेक रूप (यानि पंचदशाक्षरी मन्त्र रूप से भी) विस्तार को प्राप्त होता है। यजुर्वेद में तैत्तिरीय शाखा के अरुणोपनिषद् तो अरुणा अर्थात् भगवती का ही प्रतिपादन करता है। इस प्रकार भूतर्तुश्रुति शब्दों के द्वारा संकेत से बताये गये वर्ण संख्या 5, 6 और 4 हैं, कुल 15, उन्हें क्रमशः वाग्भव, कामराज और शक्ति कूट नाम से जाना जाता है। त्रिपुरातापिनी उपनिषद् में उनकी ब्रह्मविद्या और गायत्री महामन्त्र के साथ एक वाक्यता की है। अतः जो उपासक 24 अक्षरोंवाली गायत्री मन्त्र के समान इस 15 अक्षरोंवाली कूटत्रय को तन्मयता से जपानुष्ठान करता है वह भी ब्रह्मा आदि देवताओं के समान सृष्टि आदि कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त करता है। इस मन्त्र का

अनुष्ठान करने केलिये गुरु की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि गुरु की कृपा दृष्टि से ही आम्नाय और आगम परम्परा के अनुसार सही ढंग से अनुष्ठान कर भगवती की भक्ति के प्रताप से ऐसा सामर्थ्य प्राप्त होता है।।16।।

इस श्लोक में रहस्यपूर्ण तरीके से सांकेतिक भाषा द्वारा मन्त्र को दर्शाया जा रहा है—

ब्रह्मायोनिरमासुरेश्वरसुहृल्लेखाभिरुक्तैस्तथा
मार्ताण्डेन्दुमनोजहंसवसुधामायाभिरुत्तंसितैः।
सोमाम्बुक्षितिशक्तिभिः प्रकटितैर्बाणांगवेदैः क्रमा—
द्वर्णैः श्रीशिवदेशिकेन विदितां विद्यां तवाम्बाश्रये।।17।।

भावार्थः— हे अम्बे! ब्रह्मा=क, योनि=ए, रमा=ई, सुरेश्वर=ल, हृल्लेखा=ह्रीं के द्वारा प्रथम वाग्भव कूट के वर्णों को कहा गया है तथा मार्तण्ड=ह, इन्दु=स, मनोज=क, हंस=ह, वसुधा=ल, माया=ह्रीं के द्वारा द्वितीय कामराज कूट के वर्णों को बताकर सोम=स, अम्बु=क, क्षिति=ह, शक्ति =ल के द्वारा तृतीय शक्ति कूट के वर्णों को प्रकट कर क्रमशः बाण, अंग और वेदों की संख्या अर्थात् 5, 6, 4 कुल 15 वर्णोंवाला महामंत्र रूप श्रीविद्या जगद्गुरु साक्षात् श्री शंकर भगवान् को ही ज्ञात है ऐसी आपकी उस विद्या की मैं शरण लेता हूँ। पंचदशीमन्त्र —"कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं"।

अन्वितार्थः— हे अम्बे!= हे माते!, ब्रह्मायोनिरमासुरेश्वर सुहृल्लेखाभिः= ब्रह्मा क योनि ए रमा ई सुरेश्वर ल हृल्लेखा ह्रीं के द्वारा प्रथम वाग्भव कूट के वर्णों को, उक्तैः= कहा गया है, तथा = उसी प्रकार से, मार्ताण्डेन्दुमनोजहंसवसुधा मायाभिः= मार्तण्ड ह इन्दु स मनोज क हंस ह वसुधा ल माया ह्रीं के द्वारा द्वितीय कामराज कूट के वर्णों को, उत्तंसितैः= प्रकाशितकर, सोमाम्बुक्षितिशक्तिभिः= सोमस अम्बु क क्षिति ह शक्ति ल के द्वारा तृतीय शक्ति कूट के द्वारा, प्रकटितैः= प्रकाशित, क्रमाद्=

क्रमशः, बाणांगवेदैः = बाण, अंग और वेदों की संख्या अर्थात् 5,

कादि विद्या			
क्	अ		
	ए		
	ई	इ+इ	
ल्	अ		
ह्			
र्	ई	इ+इ	
म्			
5	+7	=	12
ह्	अ		
स्	अ		
क्	अ		
ह्	अ		
ल्	अ		
ह्			
र्	ई		
म्			
8	+6	=	14
स्	अ		
क्	अ		
ल्	अ		
ह्			
र्	ई		
म्			
6	+4	=	10
		कुल	36

हादि विद्या			
ह्	अ		
स्	अ		
क्	अ		
ल्	अ		
ह्			
र्	ई		
म्			
7	+5	=	12
क्	अ		
	ए		
	ई	इ+इ	
ह्	अ		
ल्	अ		
ह्			
र्	ई	इ+इ	
म्			
6	+8	=	14
स्	अ		
क्	अ		
ल्	अ		
ह्			
र्	ई		
म्			
6	+4	=	10
		कुल	36

6, 4 कुल 15, वर्णैः= वर्णोवाली श्रीविद्या, जो श्रीशिव देशिकेन= जगद्गुरु साक्षात् श्री शंकर भगवान् को, विदितां= ज्ञात हे, तव =आपकी, विद्यां=विद्या की, आश्रये=मैं शरण लेता हूँ। यह विद्या कादि और हादि नाम से प्रसिद्ध है, उनमें थोडा भेद है, जैसे–

व्याख्याः–इस श्लोक में पारिभाषिक नाम वाचक शब्दों से मन्त्रगत वर्णों का संकेत किया है। इसका मूल त्रिपुरोपनिषद् का 8वां मन्त्र है–

"कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्र मिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमाताऽऽदिविद्या।।"

अर्थात् कामः= क, योनिः= ए, कामकला= ई, वज्रपाणिः= ल, गुहा= ह्रीं, हसा= ह, स, मातरिश्वा=क, अभ्रं= ह, इन्द्रः= ल, पुनर्गुहा= ह्रीं, सकला= स, क, ल, मायया= ह्रीं, पुरूची= अनेक यानि 15 अक्षरवाली, विश्वमाता= शिव से लेकर पृथिवी तत्त्व पर्यन्त 36 तत्त्वों की जननी, आदिविद्या= ओंकार से अभिन्न ब्रह्मविद्या ही, एषा= यह श्रीविद्या है। इनको स्पष्टरूप से जानने केलिये विशुद्ध परम्परा के सद्गुरु का आश्रय लेके सही तरीके से जानकर माँ भगवती की उपासना द्वारा परम श्रेयस को प्राप्त करना चाहिये।।17।।

श्री भगवती का चक्रराज में पूजन कर सौभाग्यविद्या का जप और कामेश्वर विद्या की उपासना से शिव शक्ति की ऐक्यता द्वारा स्वस्वरूपैक्यता की प्राप्ति को इस श्लोक में बता रहे हैं–

नित्यं यस्तव मातृकाक्षरसखीं सौभाग्यविद्यां जपेत्
संपूज्याखिलचक्रराजनिलयां सायंतनाग्निप्रभाम्।
कामाख्यं शिवनामतत्त्वमुभयं व्याप्यात्मना सर्वतो
दीव्यन्तीमिह तस्य सिद्धिरचिरात्स्यात्त्वत्स्वरूपैक्यता।।18।।

पाठभेदः– दीप्यन्तीं।

भावार्थः–माँ भगवती पराम्बा के अनेक नाम भेद से अनेक

यह विद्या कादि और हादि नाम से प्रसिद्ध है, उनमें थोडा भेद है, जैसे– कि पूर्व पृष्ठ में दर्शायी गयी तालिका से स्पष्ट है।

विग्रह, मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र हैं। लेकिन उन सभी में चक्रराज नाम से सुप्रसिद्ध श्रीचक्र में अधिष्ठित रहनेवाली सायंकालीन प्रदीप्त उज्ज्वल अग्नि की कान्ति के सदृश जाज्वल्यमान कान्तिवाली आपका पूजन कर मातृका अक्षर की सखी प्रकाशमयी श्री सौभाग्य विद्या का जप जो उपासक करें और सर्वत्र व्यापकरूप से विद्यमान शिव नामक तत्त्व जो कामेश्वर नाम से भी विख्यात है, का भजन करें, ऐसे दोनों (कामेश्वर और कामेश्वरी) की उपासना करनेवाले को इस जन्म में ही शीघ्र देवता साक्षात्कार की सिद्धि प्राप्त होगी और आपके स्वरूप के साथ ऐक्यता की अनुभ्ति भी होगी।

अन्वितार्थः– यः = जो, अखिलचक्रराजनिलयां= संपूर्ण श्रीचक्र में निवास करनेवाली, सायंतनाग्निप्रभां= सायंकालीन प्रदीप्त उज्ज्वल अग्नि की कान्ति के सदृश जाज्वल्यमान कान्तिवाली, तव= आपका, संपूज्य= 64 उपचारों से पूजा करके, मातृकाक्षरसखीं = मातृका अक्षर की सखी, दीव्यन्तीं= प्रकाशमयी, सौभाग्यविद्यां = श्रीयन्त्र एवं पंचदशी मन्त्र के कवच को, नित्यं= सदा, जपेत् = जप आदि अनुष्ठान करता है, (और) सर्वतः= सर्वत्र, व्याप्यात्मना = व्यापक रूप से स्थित, कामाख्यं= कामेश्वर नाम से ज्ञात, एवं शिवनामतत्त्वं= शिव नामक तत्त्व, उभयं= दोनों की (कामेश्वर और कामेश्वरी) उपासना करता है, तस्य= उस उपासक की, इह = इस जन्म में, अचिरात्= शीघ्र ही, सिद्धिः= अन्तःकरण की शुद्धि होगी, और त्वत्स्वरूपैकता= आपके स्वरूप के साथ ऐक्यता की, स्यात्=प्राप्ति होगी यानि अनुभव होगा।

व्याख्याः– कामकलाविलास में लिखा है–

"सेयं परामहेशी चक्राकारेण परिणमेत यदा।

तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवताः सर्वाः।।"

इस श्लोक के अर्थ को ही अखिलचक्रराजनिलयां शब्द से कहा है, जिसका अर्थ है– श्रीचक्र के नौ आवरणों में स्थित समस्त देवी और देवताओं के मध्य में नौ चक्रों को व्याप्त कर रहनेवाली चक्रेश्वरी यानि कामेश्वरी है। इसी प्रकार कामाख्यं

शब्द से त्रिपुरसुन्दरी के शिव को कहा है, 'काम्यते अभिलष्यते परमार्थविद्भिर्योगिभिरिति कामः, कामश्चासौ ईश्वरः इति कामेश्वरः''। उभयं का अर्थ कामेश्वर और कामेश्वरी है किन्तु कुछ विद्वानों ने –'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इनके समुदाय रूप पंचप्रेतासन के चार देवों और मन्त्रफल दाता सदाशिव सहित अपने शरीर के अवयवों से आच्छादित कर सर्वत्र स्थित होकर' ऐसा अर्थ करके 'दीप्यन्तीं' शब्द से जोडकर व्याख्या की है, लेकिन यह संभव नहीं क्योंकि संस्कृत भाषा में समान लिंगोंवाले शब्दों को ही विशेषण–विशेष्यभाव से जोडा जाता है। इस श्लोक में जप का विधान किया है, वह तीन प्रकार से होता है– वैखरी, उपांशु और मानस। यहां मानस जप ही लेना है, जैसे कि वायवीय संहिता में कहा है –

''धिया मन्त्राक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम्।
उच्चरेदर्थसंस्मृत्या स उक्तो मानसो जपः।।''

अर्थात् एकाग्र बुद्धि से वर्ण स्वर और पद रूपा मन्त्र के अक्षरों को गुरु के द्वारा बताये क्रम से अर्थ चिन्तन के साथ जपने को मानस जप कहते हैं। योगसूत्र में भी कहा है–

''तज्जपस्तदर्थभावनम्''(1.28)।

इस प्रकार इस स्तोत्र के ज्यादातर भाग में श्रीविद्या की उपासना का वर्णन है। जिसमें महामुनि ने श्रीबाला विद्या बीज से उपक्रम करके उस बीज मन्त्र का उद्धार तथा जप आदि का प्रकार दर्शा के श्री सौभाग्य विद्या एवं कामेश्वर विद्या सहित श्रीचक्र के पूजन का भी जिक्र किया है। इसलिये श्रीविद्या के उपासक केलिये यह स्तोत्र बहुत उपयुक्त है।।18।।

काव्य, व्याकरण, आदि शास्त्राध्ययन संपन्न विद्वज्जन भी यदि अपना स्वरूप नहीं जाने तो उनका वह ज्ञानार्जन का समस्त प्रयास व्यर्थ परिश्रम ही है। अतः अब यह बता रहे हैं कि स्वरूपानुभूति केलिये केवल शास्त्राध्ययन पर्याप्त नहीं अपितु अन्तःकरण शुद्धि हेतु माँ भगवती की उपासना अत्यन्त आवश्यक है–

काव्यैर्पापठितैः किमल्पविदुषां जोघुष्यमाणैः पुनः
किं तैर्व्याकरणैर्बुबोधिषितया किं वाभिधानश्रिया।
एतैरम्ब न बोभवीति सुकविस्तावत्तव श्रीमतो
यावन्नानुसरीसरीति सरणिं पादाब्जयोः पावनीम्।।19।।

पाठभेदः–काव्यैर्वा पठितैः। विबोधिततया।

भावार्थः– हे अम्ब! अल्पज्ञ विद्वानों द्वारा महान प्रयास के साथ काव्य आदि को बारम्बार पढने से क्या फल मिलेगा? और बार बार उद्‌घोष से तैयार किये गये व्याकरण आदि से क्या लाभ होगा? तथा समग्र शब्द सागर को प्रकृति प्रत्यय का विज्ञान जानने की इच्छा पूर्वक ऐश्वर्य के समान प्राप्त कर वाक्पटु होने से क्या फल मिलेगा? क्योंकि जब तक आप ऐश्वर्यमयी भगवती के चरण कमलरूपी पावन सरणि का बारम्बार अनुसरण नहीं करेंगे तब तक काव्य, व्याकरण आदि से कोई सुकवि अर्थात् श्रेष्ठ विद्वान नहीं हो सकता।

अन्वितार्थः– हे अम्ब!= हे माते!, अल्पविदुषां = अल्पज्ञ विद्वानों द्वारा, काव्यैः= काव्यादियों को, पापठितैः= बार बार पढने से, किं= क्या फल मिलेगा? पुनः= और, तैः= उन सब के, जोघुष्यमाणैः= बार बार उद्‌घोष के साथ, व्याकरणैः= व्याकरण फक्किकाओं से, किं= क्या लाभ मिलेगा? वा=अथवा, बुबोधिषितया= समग्र शब्द सागर को प्रकृति प्रत्यय का विज्ञान जानने की इच्छा पूर्वक, अभिधानश्रिया = ऐश्वर्य के समान प्राप्त कर वाक्पटु होने से, किं= क्या लाभ हुआ? तात्पर्य यह है कि, यावत्= जब तक, तव= आपके, पादाब्जयोः= चरण कमल रूपी, पावनीं= पवित्र, सरणिं= मार्ग को, नानुसरीसरीति= बार बार अनुसरण नहीं करेंगे, तावत्= तब तक, एतैः= उक्त शास्त्रों के ज्ञान से, सुकविः= सफल कवि, बोभवीति न = निश्चय ही नहीं हो सकते।

व्याख्याः– इस श्लोक में जोघुष्यमाणैः यह क्रिया घुसिर् धातु की यङन्त प्रक्रिया की है तथा पापठितैः, बोभवीति और

अनुसरीसरीति –ये तीन क्रियायें पठ्, भू और सृ धातुओं की यङ्लुगन्त प्रक्रिया की हैं, एवं बुबोधिषितया यह क्रिया बुध् धातु की सन्नन्त प्रक्रिया से बना हुआ है। काव्यादि शास्त्र साक्षात् भगवान शंकर का स्वरूप है, इसलिये उसे अल्प पुण्यवाले प्राप्त नहीं कर सकते हैं। जैसे कि कहा है–

''सव्यं वपुः शब्दमयं पुरारेः अर्थात्मकं दक्षिणमामनन्ति।
अङ्गं जगन्मंगलमैश्वरं तदर्हन्ति काव्यं कथमल्पपुण्याः।।''

अर्थात् भगवान शंकर का बायां भाग (शक्ति का स्थान) शब्दमय है, दाहिना भाग (स्वयं शिव का स्थान) अर्थमय है, अतः संसार के कल्याण कारक ऐश्वर्यात्मक शिवजी के शरीर रूपी काव्यादि को अल्प पुण्यवाले कैसे प्राप्त कर सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विद्वत्ता भले ही प्राप्त हो फिर भी दैवी कृपा के विना वह विद्वत्ता प्रभाव हीन होती है। इसलिये विद्वत्ता के साथ उपासना अति आवश्यक है, क्योंकि विद्या और तप यदि एक व्यक्ति में हो तो उस व्यक्ति को ही शास्त्रकारों ने पात्र माना है।।19।।

अब यह बता रहे हैं कि माँ भगवती के चरणों के सेवन से असंभव भी संभव होता है –

गेहं नाकति गर्वितः प्रणतति स्त्रीसंगमो मोक्षति
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृतति क्ष्मावल्लभो दासति।
मृत्युर्वैद्यति दूषणं सुगुणति त्वत्पादसंसेवनात्
त्वां वन्दे भवभीतिभंजनकरीं गौरीं गिरीशप्रियाम् ।20।

पाठभेदः– प्रवणति।

भावार्थः– हे देवी! आपके भजन से घर–संसार स्वर्ग तुल्य हो जाता है, गर्वित अर्थात् दुरभिमानी भी नमन करने लगता है, प्रतिक्षण स्त्री के संग की कामना करनेवाला कामी कामवासना से मुक्त होता है, द्वेष करनेवाला शत्रु भी मित्र समान व्यवहार करने लगता है, जन्म जन्मान्तरों में किये गये महा पाप

पुण्य समान हो जाते हैं, पृथिवीपति यानि राजा भी सेवक जैसा हो जाता है, मृत्यु खुद वैद्य की तरह सेवा करता है और दुर्गुण सद्गुण बन जाते हैं – ये सब आपके चरणकमल का आश्रय लेकर भजन करने से होता है। इसलिये जन्म–मरण आदि भय को नाश करनेवाली शंकर भगवान की प्रिया गौरी की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

अन्वितार्थः– त्वत्पादसंसेवनात्= आपके चरणों का सेवन यानि भजन करने से, गेहं= घर–संसार, नाकति= स्वर्ग तुल्य हो जाता है, गर्वितः= घमण्डी, प्रणतति= घमण्ड यानि अहंकार को त्यागकर प्रणाम करता है (पाठभेद के अनुसार झुकता है), स्त्रीसंगमो= स्त्री के साथ संभोग भी, मोक्षति= मोक्ष प्रद बन जाता है, द्वेषी= शत्रु भी, मित्रति= मित्र बन जाता है, पातकं= महान पापी के पाप, सुकृतति= पुण्य में परिणत हो जाते हैं, क्ष्मावल्लभः= पृथिवीपति राजा, दासति= सेवक बन जाता है, मृत्युः= मौत यानि काल देवता यमराज, वैद्यति= वैद्य का कार्य करेगा यानि दवा देकर बचायेगा, दूषणं= समस्त दोष, सुगुणति = सद्गुण हो जायेंगे, (इसलिये) भवभीतिभंजनकरीं= संसार के भय को नष्ट करने वाली, गिरीशप्रियां= शिव की प्रिया, गौरीं= गौरी, त्वां= आप को, वन्दे= मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्याः– सर्वदा निरन्तर आपकी उपासना करनेवाले का घर भी स्वर्ग हो जायेगा, नाक का अर्थ है स्वर्ग क्योंकि नाक शब्द संस्कृत में ऐसे बनता है–"कं=सुखं, न कमिति अकं" यानि सुख का अभाव, "न अकमिति नाकं" यानि सुख के अभाव का अभाव अर्थात् अत्यन्त सुखमय और वह तो स्वर्ग ही है। घमण्डी अपने अहंकार को त्याग कर साधक के अधीन हो जाता है। स्त्रीसंग भी मोक्ष प्राप्ति में सहयोगी हो जायेगा, जैसे कि कहा है–

"भोगो योगायते साक्षात्पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मे कुलेश्वरी।।"

अर्थात् हे कुलेश्वरी! विषयभोग योग हो जाता है, पातक पुण्यात्मा हो जायेगा और कुलधर्मपालन यानि स्त्रीसंग कर संतान पैदा करना भी संसार से मुक्त होने में सहयोगी होगा। पातक का फल अनिष्ट है वह भी पुण्य की तरह इष्ट फल देगा अर्थात् पाप करनेवाले को भजन के प्रभाव से पाप कर्मों का स्वरूप एवं उनका अनिष्ट फल समझ में आयेगा और प्रायश्चित्त करके उनसे मुक्त हो जायेगा। इसी को गीता में कहा है की अत्यन्त दुराचारी भी मेरी अनन्य भक्ति करें तो उसे साधु समझें –

"अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।गीता 9.30।"

तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को यथार्थ समझ में आने पर वह पुनः पाप में प्रवृत्त नहीं होगा और विशुद्ध भावना से सन्मार्ग में प्रवृत्त होगा। उक्त तमाम प्रकार के क्लेश, पाप, समस्या, व्यावहारिक परेशानियाँ जिनका समाधान करना असंभव है वह सब माँ भगवती की पूजा, भजन, चरण सेवा व उपासना से संभव होता है। गौरी नाम का अर्थ देवीभागवत में इस प्रकार कहा है–

"योगाग्निना तु दग्धा पुनर्जाता हिमालयात्।

शंखकुन्देन्दुवर्णा चेत्यतो गौरीति सा स्मृता।।"

अर्थात् भगवती सती योगाग्नि में भस्म होकर पुनः पर्वतराज हिमालय के घर पैदा हुयी। वह शंख, कुन्दपुष्प और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान गौर वर्णवाली होने से गौरी कहलायी। अमर कोश में भी कहा है–

"उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी" (1.1.36)।।20।।

इस श्लोक में माँ भगवती को त्रिपुरा नाम से कहा है और वर्णन करते हुये बता रहे हैं कि संसार में विद्यमान समस्त त्रिकों का स्वरूप होने से त्रिपुरा नाम यथार्थ और उचित है–

आद्यैरग्निरवीन्दुबिम्बनिलयैरम्ब त्रिलिंगात्मभि–

र्मिश्रारक्तसितप्रभैरनुपमैर्युष्मत्पदैस्तैस्त्रिभिः।

स्वात्मोत्पादितकाललोकनिगमावस्थामरादित्रयै–
रुद्भूतं त्रिपुरेति नाम कलयेद्यस्ते स धन्यो बुधः।।21।।

भावार्थः– हे अम्बे! अ,उ,म– इन तीन वर्णों में; अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा रूपी स्थानों में; पुरुष, स्त्री, नपुंसक रूपी तीन लिंगों में; मिश्र, लाल, सफेद प्रभाओं में; युष्मद्=तुम, अस्मद्=मैं, तद्=वह इन तीन पदों में और अपने से उत्पन्न किये गये तीन काल– वर्तमान, भूत, भविष्यत्; भूर्भुवः स्वः– ये तीन लोक; ऋग्, यजुः, साम– ये तीन वेद; बाल्य, युवा, वार्धक्य अथवा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति– ये तीन अवस्था; ब्रह्मा, विष्णु, शिव अथवा देवता, मनुष्य, असुर– इन तीन विशिष्ट जीवों और आदि शब्द से इच्छा, ज्ञान, क्रिया– इस शक्ति त्रय; उक्त त्रिकों में व्याप्त होने के कारण आपका नाम 'त्रिपुरा' पडा है जिसका स्मरण, जप, कीर्तन आदि जो करता है वह बुद्धिमान् जीव कृतार्थ होता है।

अन्वितार्थः– हे अम्ब!= हे माते!, आद्यैः = अकारादि (अ, उ, म, अथवा अ क थ प्रमुख है जिनमें), अग्निरवीन्दुबिम्बनिलयैः= अग्नि सूर्य और चन्द्र मण्डलों में वास करनेवाले, त्रिलिंगात्मभिः =मूलाधार में स्वयम्भू लिंग अनाहत में बाणलिंग और आज्ञा में इतरलिंग के माध्यम से, अनुपमैः =उपमा रहित, मिश्ररक्तसितप्रभैः =सफेद लाल और मिश्र वर्णों से युक्त, युष्मत्पदैः = युष्मद् अस्मद् और तत् पदों के द्वारा लक्षित, स्वात्मोत्पादितकाललोक निगमावस्थामरादित्रयैः = अपने आत्मा यानि कामकला अक्षर से उत्पन्न किये गये काल (भूत वर्तमान भविष्यत्) लोक (स्वर्ग मर्त्य पाताल) निगम (ऋग्यजुःसामवेद) अवस्था (जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति) अमर (ब्रह्मा विष्णु महेश) आदि त्रिको के द्वारा, तैः = उन उन अन्य समस्त (पीठ,अग्नि,शक्ति,आदि), त्रिभिः =त्रिकों के द्वारा, उद्भूतं =उत्पन्न है, त्रिपुरा नाम= त्रिपुरा यह नाम, (उस नाम का) यः= जो, बुधः = विवेकी साधक, कलयेत् =जप चिन्तन ध्यान आदि करता है, सः = वह, धन्यः =धन्य है अर्थात् उसका जन्म सफल हुआ।

व्याख्याः—लघुस्तवराज में संक्षेप में त्रिकों को दर्शाया है— ''देवानां त्रितयो त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः, त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः। यत्किंचिज्जगति त्रिधानियमितवस्तु त्रिवर्गात्मकम्, तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः।।'' अर्थात् त्रिदेव, तीन अग्नि, त्रिशक्ति, तीन स्वर, त्रिलोक, त्रिपदी, तीन पुष्कर, तीनवेद, तीन वर्ण, इत्यादि जो कुछ भी इस जगत में तीन प्रकार से नियमित किये गये हैं वे सब त्रिवर्गात्मक वस्तु आप भगवती के त्रिपुरा नाम में ही वास्तव में अनुस्यूत हैं।

क्रमांक	त्रिकनाम	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
1	आद्या ॐ	अ	उ	म्
1	आद्या देवी	अ	क	थ
2	मण्डल	अग्नि	सूर्य	चन्द्र
3	लिंग	स्वयंभू	बाण	इतर
3	लिंग	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
4	प्रभा	श्वेत	रक्त	मिश्र
5	पद	युष्मद्	अस्मद्	तत्
6	काल	वर्तमान	भूत	भविष्यत्
7	लोक	भूः	भुवः	स्वः
8	निगम (वेद)	ऋक्	यजुः	साम
9	अवस्था	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति
9	अवस्था	बाल्य	युवा	वार्धक्य
9	अवस्था	सुप्त	मूर्छित	समाधि
10	अमर	बह्मा	विष्णु	रुद्र
11	शक्ति	इच्छा	ज्ञान	क्रिया
12	पीठ	जालन्धर	काम	उड्डीयान
13	शरीर	स्थूल	सूक्ष्म	कारण
14	समष्टि	विराट्	हिरण्यगर्भ	ईश्वर

15	व्यष्टि	विश्व	तैजस	प्राज्ञ
16	कर्मसाधनं	काय	वाक्	मनः
17	आनन्द	ब्रह्म	वासना	विषय
18	कर्मफल	उत्कृष्ट	मध्यम	सामान्य
19	कर्म शाक्त	पुण्य	पाप	मिश्र
19	कर्म सर्वमत	संचित	प्रारब्ध	आगामी
20	प्रारब्धकर्म	स्वेच्छाकृत	परेच्छाकृत	अनिच्छाकृत
21	ज्ञानप्रतिबन्ध	संशय	भ्रम	असंभावना
22	पुनस्प्रतिबन्ध	भूत	वर्तमान	भावी
23	सम्बन्ध	आधाराधेय	कार्यकारण	विषयविषयी
24	दुःख	आध्यात्मिक	आधिभैतिक	आधिदैविक
25	कारणवाद	आरम्भ	परिणाम	विवर्त
26	गुण	तमः	रजः	सत्त्वं
27	वासना	शरीर	लोक	शास्त्र
28	प्रपंच	स्थूल	सूक्ष्म	कारण
29	ज्ञानसाधन	श्रवण	मनन	निदिध्यासन
30	यौगिक बन्ध	मूल	उड्डीयान	जालन्धर
31	प्राणायाम	रेचक	पूरक	कुम्भक
32	वैराग्यकारणं	दोषदृष्टि	जिहासा	अदीनता
33	ज्ञानकरणं	वैराग्य	उपरम	श्रद्धा
34	अहंकार	कर्मज	भ्रान्तिज	सहज
35	अहंतादात्म्य	शरीर	चिच्छाया	साक्षी
36	एषणा	पुत्र	वित्त	लोक
37	आत्मा शैव	ज्ञानात्मा	महानात्मा	शान्तात्मा
37	आत्मा वेदान्त	गौण	मिथ्या	मुख्य
38	स्वर्गस्थ तापाः	क्षय	अतिशय	साहसपतन
39	शब्दवृत्ति	अभिधा	लक्षणा	व्यंजना

40	लक्षणा	जहत्	अजहत्	भागत्याग
41	सत्ता	व्यावहारिक	प्रातिभासिक	पारमार्थिक
42	परिच्छेद	वस्तु	देश	काल
43	भेद	सजातीय	विजातीय	स्वगत
44	ध्वनि	कला	बिन्दु	नाद
45	मंगलाचरण	नमस्कार	वस्तुनिर्देश	आशीर्वाद
46	अर्थवाद	गुणवाद	अनुवाद	भूतार्थवाद
47	विधिः	अपूर्व	नियम	परिसंख्या
48	अग्नि	दक्षिण	गार्हपत्य	आहवनीय
49	जीव	अवच्छेद	प्रतिबिम्ब	आभास
50	काण्ड	कर्म	भक्ति	ज्ञान
51	दोष	मल	विक्षेप	आवरण
52	योग	कर्म	भक्ति	ज्ञान
53	स्नान	जल	व्रत	मन्त्र
54	मार्ग	अधोगति	दक्षिणायन	उत्तरायण
55	पुण्यकर्म	इष्ट	पूर्त	दत्त
56	जप	वैखरी	उपांशु	मानस

ऊपर दर्शित प्रत्येक त्रिक में शक्ति चैतन्यरूप से अनुस्यूत है। इन सब त्रिकों से ही विश्वरूप तथा देहरूप कल्पना होने से आपका नाम त्रिपुरा यथार्थ है ऐसे जानकर जो आपका भजन करेगा वह धन्य हो जायेगा, उसका जीवन कृतार्थ हो जायेगा।।21।।

माँ भगवती के कूटत्रय रूप का अब प्रणव के रूप में वर्णन करते हैं –

आद्यो जाप्यतमार्थवाचकतया रूढः स्वरः पंचमः
सर्वोत्कृष्टतमार्थवाचकतया वर्णः पवर्गान्तकः।
वक्तृत्वेन महाविभूतिसरणिस्त्वाधारगो हृद्‌गतो
भ्रूमध्ये स्थित इत्यतः प्रणवता ते गीयतेऽत्रागमैः ।।22।।

पाठभेदः– गीयते चागमैः।

भावार्थः– हे अम्ब! वर्णमाला का प्रथम अक्षर 'अ' अतिशय जप के द्वारा प्राप्त करने योग्य इह लोक के सकल अर्थ की वाचकता में रूढ है, पाँचवां स्वर वर्ण 'उ' अत्यन्त उत्कृष्ट पर लोक के सकल अर्थ की वाचता में रूढ है तथा पवर्ग का पाँचवां अक्षर 'म्' बोलना रूपी क्रिया से उपलक्षित जीव चैतन्य का वाचकता में रूढ है। ये तीनों महा विभूतियों के प्रदाता हैं। इनका ध्यान करने का क्रमशः आधार, हृदय और भ्रूमध्य स्थान है। इसलिये आगम शास्त्रों के द्वारा आपकी स्तुति प्रणव रूप से की है।

अन्वितार्थः– हे अम्ब!= हे माते!, आद्यः= वर्णमाला का प्रथम अक्षर व ओंकार का प्रथम वर्ण अकार, जाप्यतमार्थवाचकतया = अतिशय जप के द्वारा प्राप्त करने योग्य स्थूल अर्थो वाच्यों का वाचक रूप से, रूढः= रूढ है (अतः मूल मन्त्र के प्रथम कूट के समान है), पंचमः= (वर्णमाला का) पांचवां, स्वरः= उकार (ओंकार का दूसरा वर्ण), सर्वोत्कृष्टतमार्थवाचकतया= सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त सूक्ष्म अर्थ के वाचक रूप से (रूढ होने से मूल मन्त्र के दूसरा कूट के समान है), पवर्गान्तकः= पवर्ग के अन्तिम, वर्णः= मकार (ओंकार का तीसरा वर्ण), वक्तृत्वेन= वक्ता के रूप से (मूल मन्त्र के तीसरे कूट के समान है), महाविभूतिसरणिः= महान ऐश्वर्य प्राप्ति के मार्ग हैं, तु= किन्तु, आधारगः= मूलाधार स्वरूप अग्निचक्र में स्थित, हृद्गतः= हृदय यानि अनाहत स्वरूप सूर्यचक्र में स्थित, भ्रूमध्यस्थितः= आज्ञाचक्र के ऊपर सोमचक्र में स्थित, इत्यतः= इस प्रकार होने से, ते= आपकी, प्रणवता= ओंकार के साथ समानता की, आगमैः= आगम शास्त्रों व वेदों के द्वारा, गीयते= घोषणा की गयी है।

व्याख्याः– प्रणव के अन्तर्गत स्थूल के वाच्य–वाचक, सूक्ष्म के वाच्य–वाचक और वक्ता के क्रम से द्योतक अ उ म् ये तीन अक्षर हैं, जिनका अनुभव योगीजन क्रम से मूलाधार, अनाहत

और भ्रूमध्य में करते हैं जहाँ पंचदशाक्षरी मन्त्र का उपासक तीन कूटों का क्रम से ध्यान करता है। अतः प्रणव बोध्य ब्रह्म और पंचदशाक्षरी बोध्य त्रिपुरसुन्दरी एक ही हैं। इस बात को इस प्रकार कहा है–

''न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव।।''

अर्थात् शिव के विना शक्ति नहीं और शक्ति के विना शिव नहीं, ये दोनों अग्नि और उष्णता के समान नित्य ही तादात्म्य भाव से रहते हैं। सौन्दर्यलहरी में जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्यजी ने भी कहा है–

''शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्''(1)

अर्थात् यदि शिव कुछ करने में समर्थ होते हैं तो वह शक्ति से युक्त होने पर ही है। इसलिये इस श्लोक में प्रणव का वर्णत्रय रूप से आगम शास्त्रों के अनुसार वर्णन किया है। उच्चारण काल में आधार स्थान में अकार का स्वरोद्भव करके उस स्वर को हृदय में उकार के साथ मिलाते हुये ऊपर लेजाकर भ्रुकुटि में मकार के साथ लय करें, इस प्रकार तीनों का त्रिपुटित योग भ्रूमध्य में होता है जहां इडा, पिंगला और सुषुम्ना का योग भी है। इसलिये भ्रूमध्य में त्रिकोणाकार चिच्छक्ति के मध्य में प्रणवरूप शिव बिन्दुरूप से स्थित है। अतः यहीं पर शिव–शक्ति का समायोग अर्थात् शिव–शक्ति सामरस्य घटित होता है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्माकार दृष्टि से भ्रूमध्य में स्थित त्रिकोणाकार चिच्छक्ति के मध्य में प्रणवरूप शिव का बिन्दुरूप से ध्यान करते हुये चित्त को स्थिर करने का विधान भगवद्गीता आदि शास्त्रों में भी किया गया है। जैसे कि गीता में कहा है–

'भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यं'

और

''सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।

ऊँमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।।

(गीता 8.12,13)।।22।।

माँ भगवती त्रिपुरा को इस श्लोक में गायत्रीरूप विशिष्ट संध्यारूप से और दर्शनशास्त्ररूप से तथा सर्वकर्म का फलदायिनी के रूप से वर्णन कर रहे हैं–

गायत्री सशिरास्तुरीयसहिता सन्ध्यामयीत्यागमै–
राख्याता त्रिपुरे त्वमेव महतां शर्मप्रदा कर्मणाम्।
तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरपि च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी
कर्तार्हन्पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः।23।

भावार्थः– हे त्रिपुरे! व्याहृतियों व तुरीय पाद सहित गायत्री मन्त्र युक्त सन्ध्यावन्दन के रूप से और यज्ञ, व्रत, जप, दान आदि महान कर्मों से प्राप्त होनेवाले सुख–शान्ति आदि फल को देनेवाली के रूप में आपको वेदों के द्वारा कहा गया है। ब्रह्म, कर्म, ईश्वरी, कर्ता, अर्हन्, पुरुष, विष्णु, सूर्य, बुद्ध, शिव, गुरु आदि तत्त्व जो क्रम से वेदान्त, मीमांसा, शाक्त, न्याय, जैन, सांख्य, वैष्णव, सौर, बौद्ध, शैव, गुरु, आदि के रूप में हैं उन उन विभिन्न दर्शनों के मुख्य विषय के रूप में आप ही हैं।

अन्वितार्थः– हे त्रिपुरे!= हे त्रिपुरसुन्दरी माते!, तुरीयसहिता = चतुर्थपाद सहित, सशिराः= सात व्याहृतियों सहित, गायत्री= गायत्री मन्त्र से युक्त, सन्ध्यामयी= त्रिकाल सन्ध्यारूपा, एवं = और, महतां = महान, कर्मणां =यज्ञ, व्रत, जप, दान आदि कर्मों के, शर्म प्रदा= फल देनेवाली, इति= इस प्रकार, त्वं= आपको, आगमैः= वेदों के द्वारा, आख्याता= कहा गया है, ब्रह्मकर्मेश्वरी कर्तार्हन्पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः = ब्रह्म, कर्म, ईश्वरी, कर्ता, अर्हन्, पुरुष, विष्णु, सूर्य, बुद्ध, शिव, गुरु आदि तत्त्व जो क्रम से, तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिः = वेदान्त, मीमांसा, शाक्त, न्याय, जैन, सांख्य, वैष्णव, सौर, बौद्ध, शैव, गुरु, आदि उन उन दर्शनों के मुख्य विषय के रूप में, अपि= भी, त्वं= आप ही हैं।

व्याख्याः– "ऊँ भूः ऊँ भुवः ऊँ स्वः ऊँ महः ऊँ जनः ऊँ तपः ऊँ सत्यं ऊँ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ऊँ आपों ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम्"– यह है सात व्याहृति और चौथा पाद सहित गायत्री मन्त्र, जो चारों सन्धि (सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त, मध्यरात्री) कालों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्वारा जपना अनिवार्य है। इसी गायत्री को आगम शास्त्रों में सन्ध्यावन्दन में प्रयुक्त व्याहृति सहित तुरीयपाद युक्त गायत्री के रूप में माँ भगवती का वर्णन किया है। लेकिन सभी चतुष्पाद गायत्री जपने के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि परमविरक्त को ही उसका अधिकारी कहा गया है। सन्ध्यावन्दन भी चारों सन्धि काल में करने विधान किया है। चौथा सन्धि काल मध्य रात्री है, उस समय श्रीयन्त्र के उपासक को अवश्य तुरीय पाद युक्त गायत्री का जप सहित पूजा करने का विधान किया गया है। गायत्री पुरश्चरण के प्रकरण में भी चतुष्पाद गायत्री का वर्णन किया गया है। लेकिन जिन लोगों को चतुष्काल सन्ध्या करना संभव नहीं है उन्हें त्रिकाल अथवा कम से कम द्विकाल सन्ध्या तो करना ही चाहिये। दक्षिणामूर्तिमत के अनुसार 16 आवरणों में उक्त दर्शन आदियों की पूजा निम्न प्रकार से की जाती है–

प्रथम आवरण की पूजा में चार्वाक दर्शन की पूजा।

द्वितीय आवरण की पूजा में जैन दर्शन की पूजा।

तृतीय आवरण की पूजा में बौद्ध दर्शन की पूजा।

चतुर्थ आवरण की पूजा में गाणपत्य दर्शन की पूजा।

पंचम आवरण की पूजा में सांख्य दर्शन की पूजा।

षष्ठ आवरण की पूजा में दोनों मीमांसा दर्शनों की पूजा।

सप्तम आवरण की पूजा में सौर दर्शन की पूजा।

अष्टम आवरण की पूजा में वैष्णव दर्शन की पूजा।

नवम आवरण की पूजा में शाक्त दर्शन की पूजा।

दशम आवरण की पूजा में शैव दर्शन की पूजा।

एकादशावरण की पूजा में सर्वगायत्री की पूजा।

द्वादश आवरण की पूजा में दशमहाविद्या की पूजा।

त्रयोदश आवरण की पूजा में कौल की पूजा।

चतुर्दश आवरण की पूजा में षट् चक्रों की पूजा।

पंचदश आवरण की पूजा में पंच पंचिका की पूजा।

षोडश आवरण की पूजा में सर्वायुधसहित दिक्पालों की पूजा।

किन्तु मतान्तर में केवल षड् दर्शनों की पूजा की जाती हैः– 1. बौद्ध, 2. दोनों मीमांसा, 3. शैव, 4. सौर, 5. वैष्णव, और 6. शाक्त। तात्पर्य यह है कि किसी भी शास्त्र का स्वाध्याय करते वक्त भावना यह होनी चाहिये कि मैं माँ भगवती के ही स्वरूप का ध्यान चिन्तन कर रहा हूँ।।23।।

पंच कोश और उसमें अनुभूत चैतन्य के द्वारा मां का वर्णन करते हैं–

अन्नप्राणमनःप्रबोधपरमानन्दैः शिरःपक्षयुक्
पुच्छात्मप्रकटैर्महोपनिषदां वाग्भिः प्रसिद्धीकृतैः।
कोशैः पंचभिरेभिरम्ब भवतीमेतत्प्रलीनामिति
ज्योतिः प्रज्वलदुज्ज्वलात्मचपलां यो वेद स ब्रह्मवित् 24

भावार्थः– हे अम्ब! अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय नाम के इन पांच कोशों को सिर, दायीं पंख, बायीं पंख, पुच्छ और धड भाग युक्त पक्षी के रूपक द्वारा प्रसिद्ध किया गया जीवब्रह्मैक्यत्व भाव को प्रकट करनेवाले एवं बडे उपनिषदों यानि श्रुतिवाक्यों द्वारा जो साधक अध्यात्म दृष्टि से प्रज्वलित अग्नि के प्रकाश के समान उज्ज्वल और स्वभाव से विद्युत् के समान चंचल ज्योतिर्मय रूप आपको इन कोशों में प्रच्छन्नरूप से

विलीन करके जानता है वह ब्रह्मवित् अर्थात् ब्रह्म को जाननेवाला है।

अन्वितार्थः– हे अम्ब!= हे माते!, शिरःपक्षयुक्पुच्छात्मप्रकटैः= पक्षी के सिर दोपंख पूच्छ और धड रूपी पांच अवयवों के रूपक के माध्यम से, प्रसिद्धीकृतैः= प्रसिद्ध किया गया, अन्नप्राणमनःप्रबोध परमानन्दैः= अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय नामक, एभिः= इन, पंचभिः= पांच, कोशैः= कोशों के द्वारा, महोपनिषदां= महान उपनिषदों के, वाक्यैः= वाक्यों से, यः= जो साधक, प्रज्वदुज्ज्वलात्मचपलां= प्रज्वलित अग्नि के प्रकाश के समान उज्ज्वल और स्वभाव से विद्युत् के समान चंचल, ज्योतिः = ज्योतिर्मय रूप से, भवतीं= आपको, एतत्प्रलीनामिति= इन पांच कोशों में प्रच्छन्न रूप से विलीन यानि व्याप्त करके, वेद= जानता है, सः= वह, ब्रह्मवित्= ब्रह्म को जाननेवाला है।

व्याख्याः–सामान्य व्यक्ति को शब्दों के लक्ष्यार्थ ग्रहण करने मात्र से ऐसी ब्रह्म निष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती। परन्तु तैत्तिरीयोपनिषद् में दर्शित पंच कोश में स्थित चिच्छक्ति अनिर्वाच्या भगवती की श्रद्धा युक्त होकर की गयी उपासना के बल से कृपा प्रसाद प्राप्त कर योग में दर्शाये प्राणायाम – प्रत्याहारादि अंगों को सिद्ध कर लेते हुये उत्तरोत्तर निर्विकल्प समाधि तक पहुंचे हुए योगीजन आनन्दमय कोश का लक्ष्यार्थ ग्रहण द्वारा अनुभव कर सकते हैं। इसलिये अन्नमय कोश को नित्य–अनित्य विवेक का अभ्यास से अनित्य निश्चय कर लेने के बाद प्राणायाम आदि क्रिया से प्राण को अपने वश में करके मनोमय कोश के प्रमुख अवयव मन पर काबू प्राप्त कर, पश्चात् एक निश्चयता युक्त ध्यानात्मक वृत्ति द्वारा विज्ञानमय कोश पर विजय प्राप्त कर स्वानुभव सिद्ध एक आत्म तत्त्व का संपूर्ण परोक्ष विज्ञान होने के कारण अनिर्वाच्य आनन्दमय कोश से उत्तीर्ण होकर ब्रह्माकारवृत्ति के अभ्यास की वजह से स्वरूप भान होता है। इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त योगीजन तथा ज्ञानीजन को आत्मविद् व ब्रह्मविद् कहा जाता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में पक्षी के रूपक द्वारा दर्शित पंच कोश इस प्रकार हैं– 1. अन्नमय कोश रूपी पुरुष का सिर, दायां हाथ, बायां हाथ, धड और पैर ही पक्षी के रूपक में क्रमशः पक्षी का सिर, दाहिना पंख, बाया पंख, धड और पूच्छ हैं। 2. उस अन्नमय कोश के भी भीतर प्राणमय कोश रूपी पुरुष का मुख्य प्राण, व्यान, अपान, आकाश और पृथिवी ही पक्षी का रूपक में क्रमशः पक्षी का सिर, दाहिनी पंख, बायीं पंख, धड और पूछ हैं। 3. उस प्राणमय कोश के भी भीतर मनोमय कोश रूपी पुरुष का यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, आदेश और अथर्ववेद ही पक्षी के रूपक में क्रमशः पक्षी का सिर, दाहिना पंख, बाया पंख, धड और पूच्छ हैं। 4. उस मनोमय कोश के भी भीतर विज्ञानमय कोश रूपी पुरुष का श्रद्धा, ऋत, सत्य, योग और महः ही पक्षी के रूपक में क्रमशः पक्षी का सिर, दाहिना पंख, बाया पंख, धड और पूच्छ हैं। 5. उस विज्ञानमय कोश के भी भीतर आनन्दमय कोश रूपी पुरुष का प्रिय, मोद, प्रमोद, आनन्द और ब्रह्म ही पक्षी के रूपक में क्रमशः पक्षी का सिर, दाहिना पंख, बाया पंख, धड और पूच्छ हैं। (2.1. 1–2.1.5)। अथवा अन्नमय कोश को रूपक में पक्षी का सिर, प्राणमय को दाहिना पंख, मनोमय को बायां पंख, विज्ञानमय को धड और आनन्दमय को पूच्छ की दृष्टि से चिन्तन करें। उक्त पंच कोशों में बन्धन का कारण विज्ञानमय कोश ही है, इसलिये विवेकचूडामणि में कहा है–

"बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः कर्तृलक्षणः।
विज्ञानमयकोशः स्यात्पुंसः संसारकारणम्।।"

अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित कर्तृत्व विशिष्ट वृत्तिवाला विज्ञानमय कोश ही इस पुरुष के संसार प्राप्ति का कारण है। इस कर्तृत्व का मिथ्यात्व निश्चय पूर्वक स्वरूप की अनुभूति करना ही मोक्ष है। अपने स्वरूपभूत ब्रह्म को ही समस्त कोशों के अन्तरतम व सब की प्रतिष्ठा बताया है, उसी को महाकुण्डलिनी शब्द से भी कहा है। जैसे कि देवीभागवत के चौथे स्कन्ध के 15 वें अध्याय

में वर्णन है–

''महाकुण्डलिनीरूपे सच्चिदानन्द रूपिणी।

प्राणाग्निहोत्रविद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके।।''

अर्थात् 'सच्चिदानन्दं ब्रह्म' इस उपनिषदोक्ति के अनुसार जो ब्रह्म का लक्षण है उसी को इस श्लोक में भगवती का लक्षण बताकर दोनों की ऐक्यता दर्शायी है।।24।।

अतः अब बताते हैं कि माँ भगवती चिच्छक्ति के स्वरूप को प्राप्त करने केलिये गुरु से दीक्षा द्वारा लक्ष्यार्थ को ग्रहण कर, उनके बताये मार्ग में प्रयत्नशील रहकर अपनी चिच्छक्तिरूपता का अनुभव जो करता है वही मुक्त होता है–

सच्चित्तत्त्वमसीतिवाक्यविदितैरध्यात्मविद्याशिव–

ब्रह्माख्यैरखिलप्रभावमहितैस्तत्त्वैस्त्रिभिः सद्गुरोः।

त्वद्रूपस्य मुखारविन्दविवरात्संप्राप्य दीक्षामतो

यस्त्वां विन्दति तत्त्वतस्तदहमित्यार्ये स मुक्तो भवेत् 25

भावार्थः– हे आर्ये! जो मुमुक्षु आपके स्वरूप को प्राप्त सद्गुरु के मुखारविन्द से साक्षात् यथाविधि दीक्षा को प्राप्त कर सच्चित्, तत्त्वमसि, इत्यादि महावाक्यों से विदित एवं अखिल प्रभाव से युक्त होने के कारण पूजित हैं जो ऐसे अध्यात्म, विद्या और शिव नामक तीन तत्त्वों का ब्रह्म में ऐक्यता रूप आपको वास्तव में ''मैं वही हूँ'' ऐसा जो मुमुक्षु अनुभव करता है वह मुमुक्षु ही मुक्त होता है।

अन्वितार्थः– हे आर्ये!= हे सर्वश्रेष्ठ माते!, त्वद्रूपस्य= आपके स्वरूपसे अभिन्नता को प्राप्त, सद्गुरोः= सद्गुरु के, मुखारविन्दविवरात्= मुख कमल में स्थित वाणी से, दीक्षां= दीक्षा को, संप्राप्य= यथाविधि प्राप्त करके, सच्चित्तत्त्वमसीति वाक्यविदितैः= सच्चित्, तद्, त्वं, और असि – इन चार वाक्यों से विदित, अखिलप्रभावमहितैः= अखिलप्रभाव से युक्त होने के कारण पूजित, अध्यात्मविद्याशिवब्रह्माख्यैः= क्रमशः ब्रह्म, शिव,

आत्मा और विद्या (ब्रह्म में ही बाकी तीनों की ऐक्यता है, इसलिये वास्तव में), त्रिभिः = तीन, तत्त्वैः = तत्त्वों के द्वारा, यः = जो, त्वां = आपको, तत्त्वतः = वास्तव में, तदहं = वह मैं हूँ, इति = ऐसा, विन्दति = प्राप्त करें अर्थात् अनुभव करता है, अतः = इसलिये, सः = वह, मुक्तः = मुक्त, भवेत् = हो जाता है।

व्याख्याः– सच्चित्, तद्, त्वं, और असि – इन चार वाक्यों से विदित क्रमशः ब्रह्म, शिव, आत्मा और विद्या (विद्या का अर्थ है ऐक्यता), उस ऐक्यता रूपी विद्यातत्त्व में ही अन्य तीनों तत्त्वों का सामंजस्य इस प्रकार है। शाक्त सिद्धान्त में शिव से आरम्भ कर पृथिवी पर्यन्त 36 तत्त्व हैं। जिन्हें प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड और शक्त्यण्ड के रूप से तीन भाग में विभक्त कर समझाया जाता है। प्रकृति से पृथिवी पर्यन्त (5 तन्मात्रा + 4 अन्तःकरण + 5 ज्ञानेन्द्रिय + 5 कर्मेन्द्रिय + 5 महाभूत) 24 तत्त्व प्रकृत्यण्ड है, माया से पुरुष पर्यन्त (माया + 5 कंचुक + पुरुष) 7 तत्त्व मायाण्ड है और शुद्धविद्या से शिव पर्यन्त (शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या) 5 तत्त्व शक्त्यण्ड है। शक्त्यभिन्न शिव तत्त्व ही परम तत्त्व है, उससे अभिन्न मैं हूँ इस प्रकार अनुभव करनेवाला ही जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होता है।

त्रिकदर्शनं

आगमशास्त्र	स्पन्दशास्त्र	प्रत्यभिज्ञाशास्त्र
सिद्धा	नामक	मालिनी
शिव	शक्ति	अणु
पति	पाश	पशु
परा	अपरा	परापरा
अभेद	भेद	भेदाभेद

कलातीत और 5 कलाः–

अनुत्तर=परमशिव परा=पूर्ण विश्वोत्तीर्ण

1. शान्तातीत	शुद्ध	2	शिव, शक्ति
2. शान्ति	शुद्ध	3	सदाशिव, ईश्वर, और शुद्धविद्या
3. विद्या	शुद्धाशुद्ध	7	माया, 5 कंचुक, और पुरुष
4. प्रतिष्ठा	अशुद्ध	23	5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 कर्मेन्द्रिय, 5 तन्मात्रा, 4 अन्तःकरण, और 4 भूत
5. निवृत्ति	अशुद्ध	1	पृथिवीतत्त्व

कुल 36 तत्त्व।

5 कंचुक = काल, कला, नियति, विद्या और राग।

4 अन्तःकरण = अव्यक्त, महत्, अहंकार, मनः

"तदेवाहं" – ऐसी भावना करने के विषय में यह उक्ति हैः–

"अहं त्वं त्वमहं देवि दिष्ट्या भेदोऽस्ति नावयोः, दिष्ट्या मत्तां प्रयातासि दिष्ट्या त्वत्तामहं गतः। तुभ्यं मह्यमनन्ताय मह्यं तुभ्यं शिवात्मने, नमो देवाधिदेवाय पराय परमात्मने।।"

अर्थात् हे देवी! मैं ही तू है और तू ही मैं है, स्वरूप दृष्ट्या हम दोनों में कोई भेद नहीं है। आनन्दरूप से तुम मुझे प्राप्त हो और आनन्दरूप से ही मैं तुम को प्राप्त हूँ। इसलिये अनन्तरूप देवाधिदेव परम शिव परमात्मा रूपी तुम्हारे लिये और मेरे लिये नमस्कार हो। दिष्ट्या शब्द का अर्थ अमरकोश में लिखा है–

"दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्दे" (3.4.10)।

दीक्षा, गुरु और दीक्षाविधि के बारे में परिशिष्ट देखें।।25।।

अतः जगत में उत्पन्न हुये मनुष्यों के हृदय में जब तक शक्ति की उपासना द्वारा शाम्भव तेज उदित नहीं होता तब तक अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट नहीं होता–

सिद्धान्तैर्बहुभिः प्रमाणगदितैरन्यैरविद्यातमो
नक्षत्रैरिव सर्वमन्धतमसं तावन्न निर्भिद्यते।
यावत्ते सवितेव संमतमिदं नोदेति विश्वान्तरे

जन्तोर्जन्मविमोचनैकभिदुरं श्रीशाम्भवं श्रीशिवे ।।26।।

भावार्थः– हे श्रीशिवे! इस जगत में जीवों के जन्म मरण रूपी बन्धन से मुक्त करना ही स्वभाव है जिसका ऐसे सूर्य के तेज रूपी प्रकाश के समान आपका शाम्भव तेज रूपी प्रकाश जब तक जीव के हृदय में उदित नहीं होता तब तक अन्य दृष्टान्त आदि सहित बहुत प्रमाणों से कहे गये विविध प्रकार के शास्त्रों के सिद्धान्तों के अभ्यास के द्वारा भी अज्ञान रूपी अन्धकार उसी प्रकार नष्ट नहीं होता जिस प्रकार संपूर्ण तारा मण्डल का प्रकाश के द्वारा रात्री का घोरान्धकार नष्ट नहीं होता।

अन्वितार्थः– हे श्रीशिवे!= हे श्री युक्ता शिवा यानि मंगलमयी! यावत् = जबतक, जन्तोः= इस जगत में जीवों के, जन्म–विमोचनैकभिदुरं= जन्म मरण रूपी बन्धन से मुक्त करना ही स्वभाव है जिसका, ऐसे ते= आपका, सविता= सूर्य का तेजोमयी प्रकाश के, इव= समान, इदं= यह, संमतं= संमत, श्रीशाम्भवं= मंगलमय शाम्भव तेज, विश्वान्तरे= जीवों के हृदय में, नोदेति= उदित नहीं होता, तावत् = तबतक, अन्यैः = अन्य साधनभूत, प्रमाणगदितैः= प्रमाणों के द्वारा प्रकाशित, बहुभिः= बहुत सारे, सिद्धान्तैः= सिद्धान्तों के द्वारा, अविद्यातमः= अज्ञान रूपी अन्धकार, न निर्भिद्यते= (उसी प्रकार) नष्ट नहीं होता, इव= जिस प्रकार, नक्षत्रैः= करोडों नक्षत्रों के द्वारा, सर्व= संपूर्ण, अन्धतमसं= घोर अन्धकार, (नष्ट नहीं होता है।)

व्याख्याः– बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है–

"अन्या वाचो विमुंचत वाचो विग्लापनं ही तत्"

अर्थात् श्रुति (वेद) प्रमाण से भिन्न प्रमाणों द्वारा प्राप्त संपूर्ण ज्ञान को त्यागो क्योंकि वे सब केवल वाणी का विलास मात्र है। इस श्रुति के तात्पर्य को ही दूर्वासा मुनिजी अपनी शैली में अभिव्यक्त कर रहे हैं कि जीव जब तक आपकी उपासना से शाम्भव तेज में समवेत आपकक स्वरूप को अनुभव नहीं करता

तब तक उसका अज्ञान नष्ट नहीं होता और उसको जन्म–मरण आदि कष्ट प्राप्त होते ही रहेंगे। इसलिये द्वैत प्रपंच से विरक्त होकर यह जीव जैसे शिव–शक्ति की समरसता को शिव–शक्ति का अभेदरूप निश्चय कर लेता है उसी प्रकार जीव–शिव के अभेद को निश्चय पूर्वक अनुभव कर लेने पर मोहान्धकार नष्ट हो जाता है। इसलिये सर्वदा अभेद भावना ही करनी चाहिये।।26।।

उक्त अभेद भावना का साधन दर्शा रहे हैं। कर्म से बद्ध शरीर युक्त जन्म मरण को प्राप्त होते हुये इस जीवात्मा केलिये सद्गुरु का आश्रय लेकर बन्धन को नष्ट करनेवाले बीज का ध्यान करना ही केवल श्रवण मनन आदि की अपेक्षा से श्रेष्ठ साधन है–

आत्मासौ सकलेन्द्रियाश्रयमनोबुद्ध्यादिभिः शोचितः
कर्माबद्धतनुर्जनिं च मरणं प्रैतीति यत्कारणं।
तत्ते देवि महाविलासलहरी दिव्यायुधानां जयस्
तस्मात्सद्गुरुमभ्युपेत्य कलये त्वामेव चेन्मुच्यते।।27।।

भावार्थः– हे देवी! समस्त ज्ञान और कर्म इन्द्रियों के आश्रयभूत मन, बुद्धि, अहंकार आदि से शोक ग्रस्त व त्रस्त एवं कर्म से बद्ध शरीर है जिसका, ऐसा यह जीवात्मा जन्म मरण की दशा को प्राप्त करता है जिसका कारण आपके महामाया के ही नाना प्रकार का विलास रूपी नदी के अनेक काम क्रोध आदि तरंग हैं जिनपर आपके दिव्य आयुधों के द्वारा ही विजय प्राप्त होती है। इसलिये आप से अभिन्न को ही सद्गुरु के रूप में स्वीकार कर उनके दर्शाये मार्ग से आपके ही स्वरूप के बोधक बीज का ध्यान करूँगा तो उक्त शरीर रूपी उपाधि से मुक्त हो जाऊँगा।

अन्वितार्थः– हे देवि!= हे देवी!, सकलेन्द्रियाश्रयमनो बुद्ध्यादिभिः= समस्त ज्ञान और कर्म इन्द्रियों के आश्रयभूत मन, बुद्धि और अहंकार आदि से, शोचितः= शोक ग्रस्त व त्रस्त,

कर्माबद्धतनुः= कर्म से बद्ध शरीर है जिसका, ऐसा असौ= यह, आत्मा= जीवात्मा, जनिं= जन्म, च= और, मरणं= मरण की दशा को, प्राप्नोति= प्राप्त करता है, यत्कारणं = जिसका कारण है जो, तत्= वह, ते= आपके, महाविलासलहरी= महामाया के ही नाना प्रकार का विलास रूपी नदी के अनेक काम क्रोध आदि तरंग हैं, दिव्यायुधानां = जिनपर आपके दिव्य आयुधों के द्वारा ही, जयः = विजय प्राप्त होती है। तस्मात्= इसलिये, त्वां= आपको ही, गुरुं = सद्गुरु के रूप में, अभ्युपेत्य= स्वीकार कर उस गुरु के दर्शाये मार्ग से, त्वामेव= आपके स्वरूप के ही, कलये= बोधक बीज का ध्यान करूँगा, चेत्= तो, मुच्यते= उक्त शरीर रूपी उपाधि से मुक्त हो जाऊँगा।

व्याख्याः– तन्त्रराज में लिखा है–

"मनो भवेदिक्षुधनुः पाशो राग उदीरितः।
द्वेषः स्यादंकुशः पंचतन्मात्रा पुष्पसायकाः।।"

अर्थात् अज्ञानियों केलिये अज्ञानी का मन– मधुरधनुष है, राग– बांधनेवाला पाश है, द्वेष– शास्त्रीय प्रवृत्ति को रोकनेवाला अंकुश है और पांच विषय ही (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध)– बहिर्मुख करनेवाले बाण हैं। ठीक इसके विपरीत साधक केलिये यही मोक्ष का साधन है, कैसे? चतुःशती में उत्तर देते हैं–

"इच्छाशक्तिमयं पाशं मंगलज्ञानरूपिणं।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधदुज्ज्वलं।।"

अर्थात् मंगलमय भावना रूपी पाश इच्छाशक्ति है, उज्ज्वल यानि प्रणव रूपी ज्ञानशक्ति धनुष है और शुद्ध अन्तःकरण रूपी क्रियाशक्ति से उपलक्षित अर्थात् अन्तःकरण से उपहित चैतन्य जीवात्मा ही बाण है। यह बात मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है–

"प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।।" (2.2.4)।

कहने का तात्पर्य यह है कि जन्म–मरण के भय को उत्पन्न करनेवाले काम क्रोधादि का वासना रूपी शत्रुसैन्य मनोरूपी राज्य को जीत लेता है। उन सब को जीतने केलिये महासेनाधिपति श्री सद्गुरु का आश्रय लेकर विवेक विचारादि सैनिकों के बल से

बीज मन्त्र की उपासना द्वारा भगवती के कृपाप्रसाद से मुक्ति का साम्राज्य प्राप्त होता है।।27।।

अब संसार चक्र में आये हुये सभी प्राणी बारम्बार जन्म मरण से त्रस्त होकर अन्त में अपने कल्याण केलिये आपकी ही शरण में आवें इस केलिये प्रार्थना करते है–

नानायोनिसहस्रसंभववशाज्जाता जनन्यः कति
प्रख्याता जनकाः कियन्त इति मे सेत्स्यन्ति चाग्रे कति।
एतेषां गणनैव नास्ति महतः संसारसिंधोर्विधे–
र्भीतं मां नितरामनन्यशरणं रक्षानुकम्पानिधे।।28।।

भावार्थः– हे दयासागर भगवती! अनेक प्रकार की हजारों योनियों में उत्पन्न होने के कारण कितनी मातायें हुयीं और कितने पिता प्रख्यात हुये हैं और आगे भी कितने माता पिता होंगे उन सबकी गिनती करना संभव नहीं है, इसलिये इस बडे संसार समुद्र के ऐसे अनुक्रम से अत्यन्त भयभीत होकर आपके अनन्य शरण आये हुये मुझ प्राणी की आप रक्षा करें।

अन्वितार्थः– हे! अनुकम्पानिधे= हे करुणा सागर माँ!, नानायोनिसहस्रसंभववशात् = अनेक प्रकार की हजारों योनियों में उत्पन्न होने के कारण, कति= कितनी, जनन्यः= मातायें, जाता= हुयीं, कियन्त= कितने, जनकाः= पिता, प्रख्याताः= प्रख्यात हुये, च= और, अग्रे= भविष्य में भी, कति= कितने, सेत्स्यन्ति= माता पिता होंगे, एतेषां= इन सब की, गणनैव= गिनती करना ही, नास्ति= संभव नहीं है, (इसलिये इस) महतः= महान, संसारसिन्धोः =संसार समुद्र से, नितराम्= अत्यन्त, भीतं= भयभीत होकर, अनन्यशरणं= अनन्य भाव से आपके शरण में आये हुये, मां= मुझ प्राणी की, रक्ष= आप रक्षा करें।

व्याख्याः– नानायोनि का तात्पर्य है 84 लाख योनि, जिनके बारे में मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है कि–

"अथ त्रिगुणं चतुरशीतिलक्षयोनिपरिणतं" (3.3)

जिसका विस्तार पुराण में इस प्रकार किया गया है–

"जलजा नवलक्षाश्च दशलक्षाश्च पक्षिणः।
कृमयो रुद्रलक्षाश्च विंशलक्षा गवादयः।।
स्थावरास्त्रिंशल्लक्षाश्च चतुर्लक्षाश्च मानवः।
पापपुण्यं समं कृत्वा नरयोनिषु जायते।।" (बृहद्विष्णुपुराण)

अर्थात् जलचर जाति में 9 लाख, पक्षी जाति में 10 लाख, कृमि कीट जाति में 11 लाख, गौ आदि पशु जाति में 20 लाख, पेड आदि स्थावर जाति में 30 लाख और मानव जाति में 4 लाख योनि हैं। मानव जाति के 4 लाख योनियों में नर योनि अत्यन्त दुर्लभ है जो पुण्य और पाप के लगभग सम होने पर ही प्राप्त होती है। कहने का तात्पर्य यह है की 84 लाख योनियों में भटकते हुये सभी प्राणी आपकी शरण में आते हैं और विशेष रूप से नर जन्म को प्राप्त मैं इस जन्म–मरण कक चक्कर का भय से मुक्त होने केलिये आपके अनन्य शरण होकर प्रार्थना पूर्वक निवेदन कर रहा हूँ कि आप कृपासागर मुझ पर कृपा करके मेरी रक्षा करें।।28।।

अब यह दर्शा रहे है कि मुक्ति किसी भी प्रकार की केवल कर्मों से प्राप्त करना संभव नहीं है। आपकी उपासना ही एक मात्र साधन है, अतः केवल कर्म की अपेक्षा श्रीविद्या श्रेष्ठ है–

देहक्षोभकरैर्व्रतैर्बहुविधैर्दानैश्च होमैर्जपैः
संतानैर्हयमेधमुख्यसुमखैर्नानाविधैः कर्मभिः।
यत्संकल्पविकल्पजालमलिनं प्राप्यं पदं तस्य ते
दूरादेव निवर्तत परतरं मातः पदं निर्मलम्।।29।।

पाठान्तरः– ख्यातं। विवर्तते।

भावार्थः– हे माते! देह को क्षुब्ध करनेवाले यानि महान कष्ट देनेवाले बहुत प्रकार के व्रत, दान, होम, जप, संतान की उत्पत्ति, अश्वमेध प्रमुख श्रेष्ठ याग, इत्यादि नाना प्रकार के कर्मों, जो संकल्प विकल्प रूपी जाल से उत्पन्न मल से युक्त हैं, के द्वारा

प्राप्य स्वर्गादि लोकरूपी पद भी पुनः जन्म मरण आदि जाल से मुक्त नहीं करते बल्कि उनका नतीजा यह है कि उस केवल कर्मी को वे आपके निर्मल परतर मोक्ष रूपी पद से भी दूर से ही निवृत्त कर देते हैं।

अन्वितार्थः– हे मातः!= हे माते!, देहक्षोभकरैः= देह को क्षुब्ध करनेवाले यानि महान कष्ट देनेवाले, बहुविधैः= बहुत प्रकार के, व्रतैः= व्रत, दानैः= दान, होमैः= होम, जपैः= जप, संतानैः= संतान की उत्पत्ति, हयमेधमुख्यसुमखैः = अश्वमेध प्रमुख श्रेष्ठ याग, नानाविधैः = इत्यादि नाना प्रकार के, कर्मभिः =कर्मों के द्वारा भी, यत्संकल्पविकल्पजालमलिनं = संकल्प विकल्प रूपी जाल से उत्पन्न मल से युक्त, प्राप्यं = प्राप्त करने योग्य, पदं = स्वर्ग आदि पद भी, (पुनः जन्म मरण आदि जाल से मुक्त नहीं करते बल्कि उनका नतीजा यह है कि वे) तस्य= उस केवल कर्मी को, ते=आपके, निर्मलं= निर्मल, परतरं= परतर, पदं= मोक्ष रूपी पद से भी, दूरादेव= दूर से ही, निवर्तते= निवृत्त कर देते हैं।

व्याख्याः– कामना पूर्वक किये गये व्रत से अन्तःकरण की शुद्धि न हो कर सिर्फ देह संताप ही फल होता है और कुछ नहीं। परोपकार भाव से दान करना असंभव ही है और प्रत्युपकार बुद्धि से किया गया दान यथोक्त (अन्तःकरण शुद्धि रूपी) फल देनेवाला नहीं होता। अग्निहोत्र आदि कर्म से अहंकार आदि निवृत्त न होने से वे व्यर्थ ही हैं। जपानुष्ठान से भी मनोवृत्ति का विराम पाना असंभव होने से जप भी निष्फल ही है। सन्तानोत्पत्ति करने के बाद भी सच्चरित्रवान सन्तति न हो तो वह अत्यन्त दःखद है क्योंकि जो सन्तानोत्पत्ति से स्वर्गीय सुख प्राप्त होना था उसके बदले दुष्ट सन्तति (जो वैदिक व स्मार्त कर्म में श्रद्धा रहित है) के योग से नरकवास ही प्राप्त होता है। अश्वमेध आदि महान यज्ञों से अहं– ममभाव छूट कर निर्मल अन्तःकरण न हो कर उल्टा द्वेष आदि बढने से यज्ञ केवल यज्ञीय पशुओं के ध्वंस का प्रायश्चित्त मात्र ही है, अन्य कोई शुभ फल प्रदायक नहीं है। इसलिये अन्तःकरण की शुद्धि करनेवाले कर्मकाण्ड शास्त्रोक्त विधि विधान

से करने के बाद भी कर्मकाण्ड में बारम्बार कृत संकल्प विकल्प जाल के कारण यदि माया का आवरण को न हटा सके तो मल युक्त होने से स्वर्ग लोक आदि पद ही प्राप्त होगा जो आपके परम पद से उस कर्मी को दूर कर देगा और पुनः जन्म मरण के चक्कर में डाल देगा। अतः शुद्ध सत्त्व प्रधान वृत्तिवाले अधिकारी आपके परम पद को प्राप्त करते हैं, जिसको पाने के बाद फिर वापस आना जाना नहीं होता, ऐसा आपका श्रेष्ठ पद है। इसलिये देवीभागवत में कहा है–

''यत्रास्ति भोगो न हि तत्र मोक्षो, यत्रास्ति मोक्षो न हि तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।''

अर्थात् जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं (केवल कर्मी को स्वर्ग आदि भोग मिलता है किन्तु मोक्ष नहीं) और जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं (केवल परोक्ष ब्रह्म ज्ञानी को क्रममुक्ति रूपी मोक्ष मिलेगा किन्तु भोग नहीं) लेकिन श्रीत्रिपुरसुन्दरी के साधन में तत्पर साधकों को उपासना और ज्ञान के कारण इस जीवन में ही सब प्रकार का भोग और अन्त में मोक्ष अवश्य अनुभव होगा, हाथ में विद्यमान आँवले के समान।।29।।

अब यह दर्शा रहे हैं की देवी भगवती ही मातृकारूप से बहुत वर्ण एवं धातुओं के द्वारा बहुत अर्थों के माध्यम से अपने चिदात्मभाव से समस्त विश्व में व्याप्त होकर प्रकाशित हो रही है–

पंचाशन्निजदेहजाक्षरमयैर्नानाविधैर्धातुभि–
र्बह्वर्थैः पदवाक्यमानजनकैरर्थाविनाभावितैः।
साभिप्रायवदर्थकर्मफलदैः ख्यातैरनन्तैरिदं।
विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृक।।30।।

पाठभेदः– भवै।

भावार्थः– हे मातृकास्वरूपिणी देवी! अपने देह से उत्पन्न पचास अक्षरमय नाना प्रकार के धातुओं के द्वारा बहुत अर्थों के माध्यम से पद, वाक्य और प्रमाणों के जनक होकर कर्ता की इच्छा के अनुरूप चतुर्विध पुरुषार्थ से नित्य संबद्ध रह कर

पुरुषार्थ, कर्म और कर्मफल जन्मादि को देने की वजह से अनन्तरूप से प्रकाशित होते हुये इस संपूर्ण विश्व को चिदात्मभाव से व्याप्त करके 'मैं ही हूँ', 'मैं ही हूँ' ऐसे आप भासित हो रही हैं। अर्थात् वस्तु मात्र में चैतन्य प्रकाश के रूप में आप ही भासित हो रही हैं।

अन्विातार्थः– हे मातृके!= हे मातृकास्वरूपिणी!, पंचाशन्निज देहजाक्षरमयैः= अपने शरीर से उत्पन्न पचास संख्या युक्त अक्षर प्राय के द्वारा, नानाविधैः= नाना प्रकार के और, बह्वर्थैः= बहुत अर्थों से युक्त, धातुभिः= धातुओं के द्वारा, अर्थाविनाभावितैः= जो अर्थ के विना नहीं होते अर्थात् अर्थ से नित्य संबद्ध सार्थक, पदवाक्यमानजनकैः= पद यानि व्याकरण शास्त्र द्वारा विरचित अनन्त शब्द एवं वाक्य यानि मीमांसा शास्त्र द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों और मान यानि न्याय शास्त्र द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का जनक होकर (अथवा व्याकरण से बने पद व उनके द्वारा रचित वाक्य एवं मान यानि छन्दःशास्त्र), अनन्तैः= अनन्त, साभिप्रायवद र्थकर्मफलदैः= कर्ता की इच्छा के अनुरूप चतुर्विध पुरुषार्थ से नित्य संबद्ध रह कर पुरुषार्थ, कर्म और कर्मफल जन्मादि को देने की वजह से, ख्यातैः= प्रसिद्धी द्वारा, इदं= इस, विश्वं= विश्व को, चिदात्मना= अपने चैतन्य रूप से, व्याप्य= व्याप्त करके, अहमहमिति= 'मैं ही हूँ', 'मैं ही हूँ' ऐसे, उज्जृम्भसे= आप भासित हो रही हैं।

व्याख्याः– हे मातृकास्वरूपिणी माते! आप अपने परावाङ्मय शरीर से पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के क्रम से उत्पन्न पचास अक्षर प्रायः नाना प्रकार के बहुत अर्थों से युक्त धातुओं के द्वारा (यहां धातु शब्द से लोहा अथवा शरीर के वीर्य आदि अर्थ नहीं लेना, किन्तु संस्कृत व्याकरण में पाणिनी द्वारा धातुपाठ में संकलित 'भू सत्तायाम्' इत्यादि को ही लेना है। एक धातु का एक ही मुख्य अर्थ होना चाहिये तो बहुत अर्थ कसे? जवाब है– "धातूनामनेकार्थत्वात्" व्याकरण में यह सिद्धान्त स्वीकारा गया है

कि धातुओं क अनेक अर्थ होते हैं, पाणिनी ने धातु पाठ में केवल प्रचलित प्रसिद्ध अर्थों का ही संकेत दिया है)। तात्पर्य यह है कि वाणी के द्वारा उच्चारित समस्त शब्दों के स्थूल स्वरूप पचास अक्षरों का मूल कारण मातका आपके ही शरीर से प्रकट होकर वर्ण से आरम्भ करके धातुओं के द्वारा अनन्त अर्थ को समझानेवाले अनेक शब्दों की रचना की जाती है। ऐसे अर्थवान् शब्दों के समुदाय से ही व्याकरण, मीमांसा, न्याय आदि समस्त शास्त्रों की रचना हुई है (अथवा व्याकरण से 'सुप्तिङन्तं पदं' सूत्र द्वारा बने पद व उन पदों के द्वारा रचित वाक्य एवं मान यानि छन्दःशास्त्र), जिनके लक्ष्यभूत मुख्य सिद्धान्त जीवब्रह्मैक्यता ही है। इसलिये उन सब में आपका गूढ चैतन्य स्वरूप छिपा है जिसके बल से कर्म का फल देने में वे समर्थ होते हैं। अतः आप नाद के रूप में भी संपूर्ण जगत में व्याप्त होकर भासित हो रही हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि यहां पचास का तात्पर्य इक्यावन है, उनका तर्क है कारणरूपा माता का वाङ्मय शरीर एक है और उससे उत्पन्न पचास हैं तो कुल इक्यावन हुये। जैसे कि कहा है–

"विचिकीर्षुर्क्षैनीभूत्वा सा चिदभ्येति बिन्दुताम्"

अर्थात् वह चिच्छक्ति सृजन करने केलिये उन्मुख हो कर बिन्दुता को प्राप्त हो गयी। तात्पर्य यह है कि चिच्छक्ति कारण बिन्दु है, उससे कार्यबिन्दु, उससे नाद, उससे बीज उत्पन्न होते हैं, जिनके अधिदैवरूप है क्रमशः अव्यक्त, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् जो क्रमशः शान्ता, वामा, ज्येष्ठा और रौद्री से युक्त है और ये ही अम्बिका, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति रूप भी हैं। अधिभूत में ये कामरूप, पूर्णागिरि, जालन्धर और उड्डियान पीठरूप हैं। ये ही अध्यात्म में बिन्दु, शक्ति, पिण्ड और कुण्डली के रूप से हैं।।30।।

माँ भगवती का चैतन्य स्वरूप इस संसार चक्र में सर्वत्र व्याप्त है और वही स्वरूप श्रीचक्र में सूक्ष्मरूप से विराजमान है, यह श्रुति सम्मत है, इसी को स्पष्ट कर रहे हैं–

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोश इति ते संसारचक्रात्मकं
विख्यातं तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयं सर्वतः।
एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिररुणं श्रीसुन्दरीभिर्वृतं
मध्ये बैन्दवसिंहपीठललिते त्वं ब्रह्मविद्या शिवे।।31।।

भावार्थः– हे शिवे! आपका विख्यात श्रीचक्र ही समस्त संसार चक्र है, जो कि वेद के भी मूल का कोश है। वह खुद में अधिष्ठित अविनाशी शिव ज्योति से परिपूर्ण है। यह मन्त्रमयात्मक कामेश्वरी आदि सुन्दरियों से वेष्टित होने से अरुणा है। ऐसी श्रीचक्र के मध्य में त्रिकोणान्तर्गत बिन्दुरूपी सिंहासन पर आप ही शिवाभिन्ना श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मविद्या के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

अन्वितार्थः– हे शिवे!= हे कल्याणरूपिणी!, ते= आपका, विख्यातं= सुप्रसिद्ध, श्रीचक्रं= श्रीचक्र, (ही) संसारचक्रं= संसारचक्र है, इति= इस तरह वह, श्रुतिमूलकोशः= श्रुतियों के मूल ओंकार का कोश है, सर्वतः= और वह सब ओर, तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयं= उस श्रीचक्र में अधिष्ठित अविनाशी शिवप्रकाश से व्याप्त है, एवं एतत्=यह, मन्त्रमयात्मिकाभिः= मन्त्ररूपा कामेश्वर्यादि सुन्दरियों से, वृतं= वेष्टित (होने से), अरुणं= अरुणा है, बैन्दवसिंह पीठललिते = बिन्दुचक्र में स्थित सिंहासन के कारण निरुपम शोभायुक्त, मध्ये =त्रिकोण के मध्य में, त्वं= आप ही, ब्रह्मविद्या= परब्रह्म स्वरूपिणी, उज्जृम्भसे= भासित हो रही हैं।

व्याख्याः– श्रीचक्र में नौ चक्र हैं। उनमें चार शिव चक्र हैं और पांच शक्ति चक्र हैं। वे नौ चक्र समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक होने से श्रीचक्र को संसार चक्र कहा गया है। अतः उसकी उपासना करनेवाले उपासक की देह में ही श्रीचक्र को घटाया हैं, क्योंकि कहा गया है की– "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे, यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे"। इसलिये श्रीचक्र, संसार चक्र और देहचक्र तीनों ही परस्पर अभिन्न हैं, (परिशिष्ट में इसका विस्तार है), ऐसे ही समझाकर उपासक को उपासना करनी चाहिये। अतः सर्वप्रथम

देहचक्र की संसारचक्र से ऐक्यता अर्थात् ब्रह्माण्डरूपी स्थूल प्रपंच की साधक के स्थूल देह से ऐक्यता और उसको श्रीचक्र के साथ अभेद बताया है, ताकि आरम्भिक अवस्था में साधक अपने स्थूल बाह्यदृष्टि से बाह्यस्थूलोपचारसामग्रियों को लेकर बहिर्याग अर्थात् बाह्यपूजन कर सके। तत्पश्चात् यह बताया गया है कि वे नौ चक्र साधक के अपने देह में ही है, ताकि साधक अपने सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से अन्तर्सूक्ष्मोपचार सामग्रियों को लेकर अन्तर्याग अर्थात् अन्तर्पूजा कर सके। ऐसी पूजा योगी लोग ध्यानयोग में अपने भीतर नौ चक्रों का साक्षात्कार करते हुये अन्तर्याग करते हैं, जिसके निरन्तर अभ्यास से ध्यान, ध्याता और ध्येयरूपी त्रिपुटीकृत भेद नष्ट होकर शिवशक्त्यैक्यता को प्राप्त करता है, यही श्रीचक्र पूजन का मुख्य फल है।।31।।

अब प्रासादमन्त्र का वर्णन करते हैं–

बिन्दुप्राणविसर्गजीवसहितं बिन्दुत्रिबीजात्मकं
षट् कूटानि विपर्ययेण निगदेत्तारत्रिबालाक्षरैः।
एभिः संपुटितं प्रजप्य विहरेत्प्रासादमन्त्रं परं
गुह्याद्गुह्यतमं सयोगजनितं सद्भोगमोक्षप्रदम्।।32।।

पाठभेदः –बालाबलैः। विरहेत्।

भावार्थः– हे भगवती! बिन्दु युक्त त्रिबीजरूप मन्त्र (ऐं ह्रीं श्रीं) को बिन्दु (अं) प्राण (हं) और विसर्ग युक्त जीव (सः) के सहित अर्थात् (अं हंसः अः सोऽहं) ये छः अक्षर तथा विपरीत क्रम से महाविद्या के तीन कूटों को (तृतीय, द्वितीय, प्रथम) तारत्रि (ऐं ह्रीं श्रीं) और बाला (विद्या यानि वाग्भव, कामराज, शक्ति) सहित अक्षर अथवा बल (बीज) अर्थात् ऊँकार से संपुटित करके उच्चारण करें, यह मन्त्र गोपनीयों से भी अत्यन्त गोपनीय एवं सर्व श्रेष्ठ है, इसे प्रासाद मन्त्र कहते हैं। क्योंकि यह केवल जगदम्बा की पूर्ण कृपा से गुरु में योग के द्वारा प्रकट होता है। अतः उसको गुरु से ही प्राप्त कर जपकर सब प्रकार का सुख पाने योग्य है। साधक को जीवन काल में ऐहिक उत्तम भोग प्राप्त कराके अन्त

में मोक्ष को प्राप्त करानेवाला यह मन्त्र है।

अन्वितार्थः– एभिः= इन, तारत्रिबालाक्षरैः= तारत्रि (ऐं ह्रीं श्रीं) और बाला (विद्या यानि वाग्भव, कामराज, शक्ति) सहित अक्षर अथवा बल (बीज) अर्थात् ऊँकार से, संपुटितं= संपुटित, बिन्दुप्राणविसर्गसहितं= बिन्दु (अं) प्राण (हं) और विसर्ग युक्त जीव (सः) के सहित अर्थात् (अं हंसः अः सोऽहं), षट् = ये छः अक्षर, विपर्ययेण= व्युत्क्रम से, बिन्दुत्रिबीजात्मकं = बिन्दु युक्त त्रिबीजरूपमन्त्र (श्रीं ह्रीं ऐं), तथा कूटानि= कूटों को (तृतीय, द्वितीय, प्रथम), निगदेत् = पाठ करें, जो गुह्यात्= गोपनीयों से भी, गुह्यतमं= अत्यन्त गोपनीय, परं= सर्व श्रेष्ठ, संयोगजनितं= मां भगवती की कृपा से उत्पन्न, सद् भोगमोक्षप्रदं= श्रेष्ठ भोग और मोक्ष प्रदायक, प्रासादमन्त्रं= प्रासाद मन्त्र है उसको, प्रजप्य = पुरश्चरण आदि अनुष्ठान द्वारा जप करके, विहरेत्= विना कोई रोक टोक संसार में विहार करें अर्थात् सर्व सुख से संपन्न रहे।

व्याख्याः– श्री जगदम्बिका की पूर्ण कृपा से सद्गुरु द्वारा विधि विधान से प्राप्त करने योग्य मन्त्र होने से इसका स्पष्टीकरण करने में आगम शास्त्र की आज्ञा नहीं है। इसलिये इस श्लोक में प्रासाद मन्त्र को संकेत मात्र से बताया है। ऐसे मन्त्र का सही स्वरूप जानने व प्राप्त करने केलिये साधक को पहले अपने अन्तःकरण को अन्य मन्त्रों के अनुष्ठान से शुद्ध कर अधिकारी बनकर दीक्षा विधान से उपदिष्ट होकर गुरु मुख से ग्रहण कर जपादि अनुष्ठान करने से उक्त फल प्राप्त होता है।

प्रासाद मन्त्र का स्वरूप ऐसा है– " ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं, हंसः सोऽहं अं हंसः अः सोऽहं, ह्सौः हौं, सोऽहं अः हंसः अं सोऽहं हंसः, सकलह्रीं हसकहलह्रीं कएईलह्रीं श्रीं ह्रीं ऐं ऊँ।" इसे षष्ठी (60 अक्षरवाला) मन्त्र भी कहा है।।32।।

अब श्लोक संख्या 33 से 44 तक श्री भगवती के विभिन्न अंगों का वर्णन करते हुये माँ के स्वरूप का ध्यान पूर्वक स्वान्तःकरण में निवास करने के लिये प्रार्थना करते है–

आताम्रार्कसहस्रदीप्तिपरमा सौन्दर्यसारैरलं
लोकातीतमहोदयैरुपयुता सर्वोपमाऽगोचरैः।
नानानर्घ्यविभूषणैरगणितैर्जाज्वल्यमानाभित–
स्त्वं मातस्त्रिपुरारिसुन्दरि कुरु स्वान्ते निवासं मम।।33।।

भावार्थः– हे माते! हे त्रिपुरासुर का नाश करनेवाली! हे शंकर की प्रिया सुन्दरी! पूर्णरूप से ताम्बे के लाल रंग के समान लाल रंग युक्त तथा सूर्य के हजारों किरणों की कान्ति के समान श्रेष्ठ प्रकाश युक्त, सौन्दर्य के सार से परिपूर्ण, लोकातीत महा शोभा से युक्त, सब प्रकार की उपमाओं का अविषय होने के कारण असंख्य नाना अमूल्य जाज्वल्यमान आभूषणों से मण्डित आप मेरे अन्तःकरण में निवास करें।

अन्वितार्थः– हे मातः!= हे माते!, हे त्रिपुरारि!= हे त्रिपुर नामक असुर का विनाश करनेवाली!, हे सुन्दरि!= हे शिवजी की प्रिये! "सुन्दरी रमणी रामा" (अमरकोशः2.6.4), सौन्दर्यसारैः = सुन्दरता का मथन करके निकाले गये सार से, लोकातीतमहोदयैः = चौदह लोकों से परे अर्थात् चौदह लोकों में अनुपलब्ध महा शोभा से, सर्वोपमागोचरैः = संसारभर की उपमा का अविषय तथा, अगणितैः = अनगिनत, नानानर्घ्यभूषणैः= अनेक अतुलनीय आभूषणों से, उपयुता= अलंकृत होने से, आताम्रार्कसहस्र दीप्तिपरमा= पूर्णरूप से ताम्बे के लाल रंग के समान लाल रंग युक्त तथा सूर्य की हजारों किरणों की कान्ति के समान श्रेष्ठ प्रकाश युक्त, अभितः = चारों ओर से, जाज्वल्यमाना = अग्नि के समान तेजस्विनी आप, मम = मेरे, स्वान्ते = हृदय में, निवासं = निवास, कुरु = करें।

व्याख्याः– हे माते! हे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी! 'सर्वोपमागोचरैः' इस शब्द से उपमा रहित अर्थ ही इष्ट है क्योंकि अद्वितीय की उपमा कैसे हो सकती है, उपमा द्वैत में ही होता है। यद्यपि मन्द एवं मध्यम अधिकारियों केलिये माँ साकार रूप धारण कर लेती

है तथापि वास्तव में वह निरुपम ही होती है। चित्ते शब्द की अपेक्षा 'स्वान्ते' शब्द का प्रयोग करने से ज्ञात होता है कि मन बुद्धि आदि की अपेक्षा हृदय ही परा बीज का स्थान इष्ट है, जो

"हृदयं स्वान्तं हृद्"(अमरकोश 1.5.31)

के अनुसार उचित है। क्योंकि हृदय ही पराबीज का अधिष्ठान है, इसलिये टीकाकार ने कहा है

"हृदयस्थः सर्वजगद् बीजत्वात् तत्र जगद्रूपेण स्थिता"

अर्थात् हृदयस्थ परा बीज ही जगत का बीज होने से हृदय में जगत रूप से शक्ति ही स्थित है तथा त्रिंशिका में भी कहा है–

"यथा न्यग्रोधबीजस्य शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरं।।"

अर्थात् जैसे वट वृक्ष के बीज में शक्ति रूप से महान वृक्ष अन्तर्निहित है वैसे ही यह चराचर जगत हृदयस्थ बीज में ही स्थित है। इस प्रार्थना का मूल आशय यह है कि जिस प्रकार यह समस्त विश्व आपके ही अनुपम तेजोमय सामग्रीयों के तेजःपुंज से प्रकाशमान हो रहा है उसी प्रकार मेरे अन्तःकरण में विद्यमान अन्धकाररूपी अज्ञान को नष्ट करके आपका शुभ तेजोमय चैतन्य प्रकाश मेरे अन्तःकरण में सदा स्थित रहे।।33।।

अब माँ जगदम्बा के चरणकमलों के वर्णन करते हुये अपने मस्तक में सदा स्मरण करने का विधान कर रहे हैं–

शिंजन्नूपुरपादकंकणमहामुद्रासुलाक्षारसा–
लंकारांकितपादपंकजयुगं श्रीपादुकालंकृतम्।
उद्भास्वन्नखचन्द्रखण्डरुचिरं राजज्जपासंनिभं
ब्रह्मादित्रिदशासुरार्चितमहं मूर्ध्नि स्मराम्यम्बिके।।34।।

पाठभेदः– अलंकारांकितमंघ्रिपंकजयुगं।

भावार्थः– हे अम्बिके! ब्रह्मा आदि देवताओं सहित असुरों से भी पूजित, सकल ऐश्वर्यमयी पादुका से अलंकृत, लाल रंग के जपा कुसुम के समान लालिमा युक्त व चान्द के टुकडे के समान अतिसुन्दररूप से प्रकाशमान उज्ज्वल नाखून, और रुमझुम शब्द करते आपके नूपुर और पैर के (कटक) कंकणों से युक्त तथा विभिन्न महा मुद्राओं अर्थात् सामुद्रिक चिह्नों और लाक्षारस से बनाये गये अलंकारों से अंकित आपके चरण कमल युगल को मैं अपने मस्तक में सदा स्मरण करता हूँ।

अन्वितार्थः–हे अम्बिके!= हे माते!, ब्रह्मादित्रिदशासुरार्चितं =ब्रह्मा आदि देवताओं सहित असुरों से भी पूजित, श्रीपादुका लंकृतम्= चिन्तामणि आदि रत्नों से जडित ऐश्वर्यमयी पादुका से अलंकृत, राजज्जपासन्निभं =तत्काल खिले हुये जपा पुष्प के समान लाल रंग युक्त कान्तिवाले, उद्भास्वन्नखचन्द्रखण्डरुचिरं = चांद के टुकडे के शीतल प्रकाश के समान शीतल प्रकाश बिखेरता हुआ उज्ज्वल नाखून, (तथा) शिंजन्नूपुरपादकंकणमहामुद्रासुलाक्षारसा– लंकृतम्= अव्यक्त मधुर ध्वनि करता हुआ नूपुर यानि पायल और चरण कटक (पायल के ऊपर पहनने योग्य चरण का आभूषण) युक्त तथा सामुद्रिक चिह्नों और लाक्षा के रस से बनाये गये सुन्दर अलंकारों से अंकित आपके चारण कमल युगल को, अहं = मैं, मूर्ध्नि= अपने मस्तक में, स्मरामि= नित्य स्मरण करता हूँ।

व्याख्याः– यद्यपि कंकण का अर्थ हाथों की कलाई पर बाँधने योग्य आभूषण को कहा जाता है तथापि यहाँ पादकंकण शब्द का अर्थ पाद कटक लेना प्रकरण के अनुसार उचित होगा। क्योंकि 64 उपचारों में भी पादकटक के बाद नूपुर का पूजन कहा गया है। इसी तरह प्रकरण के अनुसार यहाँ महामुद्रा शब्द का अर्थ चरणगत सामुद्रिक मुद्रायें है, न कि योग की महामुद्रा। सुलाक्षारस का अर्थ मेहंदी के पत्तों का रस लेना है, जिससे चरणों को अलंकृत किया जाता है। उद्भास्वन्नखचन्द्रखण्ड और राजज्जपासन्निभं इन दोनों शब्दों को रूपकालंकार में प्रयोग

किया गया है। माँ भगवती के चरण का मस्तक में ध्यान करनेवाले भक्त के माथे पर माताजी की असीम कृपा होने से वह भक्त निर्भय हो जाता है।।34।।

अब माता के नितम्ब भाग का वर्णन कर पूजन का विधान कर रहे हैं–

आरक्तच्छविनातिमार्दवयुजा निःश्वासहार्येण यत
कौशेयेन विचित्ररत्नघटितैर्मुक्ताफलैरुज्ज्वलैः।
कूजत्कांचनकिंकिणीभिरभितः संनद्धकांचीगुणै–
रादीप्तं सुनितम्बबिम्बमरुणं ते पूजयाम्यम्बिके।।35।।

पाठभेदः– सत्।

भावार्थः–हे अम्बिके! थोडे लाल रंग की आभा तथा अत्यन्त मृदुता युक्त, निःश्वासहार्य अर्थात् अत्यन्त हल्का (फूंक मारने से उड जाये ऐसे) रेशम के वस्त्र से शोभायमान, विचित्र अनेक रत्नों से खचित तथा उज्ज्वल मोतियों से जडित एवं मनोहर ध्वनि की गूंज करता हुआ सोने के क्षुद्र घंटिकाओं से युक्त सोने के कटिसूत्र से बंधा हुआ और चमचमाता हुआ लाल वस्त्र युक्त होने से स्वयं रक्त वर्ण युक्त आपके नितम्ब की पूजा अर्थात् ध्यान करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे अम्बिके! = हे माते!, आरक्तच्छविना= थोडे लाल रंग की आभावाले (शोभावाले), अतिमार्दवयुजा= अत्यन्त कोमलता से युक्त, निश्वासहार्येण= श्वास प्रश्वास के चलन मात्र से उडनेवाला अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म, यत्कौशेयेन (सत्कौशेयेन)= जो रेशम के वस्त्र से शोभायमान(सत् यानि उत्तम रेशम से बना वस्त्र), विचित्ररत्नखचितैः=अनेक प्रकार के रत्नों से जड़ित, उज्ज्वलैः= अत्यन्त चमकीले, मुक्ताफलैः= गजमुक्ता मणियों से जडित, एवं कूजत्कांचनकिंकिणीभिः = मधुर शब्द करती हुयी सोने की क्षुद्र घंटिकाओं की लटकनियों से युक्त, सन्नद्धकांचीगुणैः = सोने के कटिसूत्र से बन्धा हुआ होने से,

अभितः = पूर्ण रूप से, आदीप्तं = चमचमाते हुये, ते = आपके, अरुणं = लालिमा युक्त, सुनितम्बबिम्बं = सुन्दर नितम्ब मण्डल की, पूजयामि = मैं मन में भावना करता हूँ।

व्याख्याः– यद्यपि नितम्ब प्रदेश का पूजन, ध्यान, आदि अप्रसिद्ध है और सामान्य साधकों से असंभव भी है तथापि दुर्वासा मुनिजी पूजन का विधान करते हैं, यह दैवी संकेत है, क्योंकि देवी देवताओं के सभी अंग प्रत्यंग पूजनीय, वन्दनीय और ध्येय है। इसलिये इस संबंध में इस जगह पर विस्तृत वर्णन करना अनुचित नहीं है, अपितु अधिकारी साधक को शास्त्र में जैसे बताया है वैसे उपासना करना ही श्रेयस्कर है। यद्यपि "अपर्णा पार्वती दुर्गा मडानि चन्द्रिकाऽम्बिका" (अमरकोश1.1.37)

के अनुसार भगवती पार्वती का नाम अम्बिका है तथापि

"जगन्माता भारतीपृथिवीरुद्राण्यात्मकेच्छाज्ञानक्रियाशक्तीनां समष्टिरम्बिकेत्युच्यते"

इस आगम वचन के अनुसार समष्टि अव्यक्त रूपा शक्ति को ही लेना चाहिये। इसलिये स्कन्दपुराण में भी कहा है कि–

"रात्रिरूपा महादेवी दिवारूपो महेश्वरः"।

यहाँ अनेक विशेषणों के द्वारा नितम्ब को अत्यन्त मृदु और दिव्य बता रहे हैं। (आरक्त = ईषद्रक्त) थोडे लाल रंग, छवि शब्द शोभा अर्थ में है। (आदीप्तं = आ सम्यक् दीप्तं) चमकता हुआ।

"पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः" (अमरकोशः–2.6.74)

स्त्रियों के कटि के पश्चात् भाग को नितम्ब कहते हैं। कमरबन्ध को कांची, कटिमेखला, रशना आदि शब्दों से कहा जाता है। बडे बडे हाथियों के मस्तक अर्थात् गण्डस्थल से जो मणि निकलती है उसे गजमुक्ता कहते हैं और वह समुद्र में सीप से निकलनेवाले मोतियों से भी ज्यादा शुभ्र एवं चमकवाली होती है। ऐसे आभूषणों से अलंकृत एवं सूक्ष्म रेशमवस्त्र से आच्छादित सुन्दर मृदु तथा दिव्य प्रकाशमयी नितम्ब का ही यहाँ ध्येय रूप

से वर्णन किया है।।35।।

अब जगदम्बा के स्तन द्वय कक वर्णन पूर्वक ध्यान का विधान करते हैं–

कस्तूरीघनसारकुंकुमरजोगन्धोत्कटैश्चन्दनै–
रालिप्तं मणिमालयातिरुचिरं ग्रैवेयहारादिभिः।
दीप्तं दिव्यविभूषणैर्जननि ते ज्योतिर्विभास्वत्कुच–
व्याजस्वर्णघटद्वयं हरिहरब्रह्मादिपीतं भजे।।36।।

भावार्थः– हे जननी! कस्तूरी, कपूर और केसर के चूर्ण (कुंकुम) की उत्कट गन्ध से युक्त चन्दन से लिप्त, मणियों की माला और कण्ठ के हार से अत्यन्त शोभायमान, दिव्य आभूषणों से देदीप्यमान तथा हरि–हर–ब्रह्मा आदि देवों से पान किये गये सोने के दो घडों के समान आपके स्वतः सिद्ध कान्ति से प्रकाशित कुच द्वय का मैं ध्यान करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे जननि!= हे जननी!, कस्तूरीघनसारकुंकुम–रजोगन्धोत्कटैः= कस्तूरी, कपूर और केसर के चूर्ण (कुंकुम) की उत्कट गन्ध से युक्त, चन्दनैः= चन्दन से, आलिप्तं= पूर्णरूप से लिप्त, मणिमालया= हीरे, वैडूर्य, आदि मणियों की माला से (और), ग्रैवेयहारादिभिः =गले में धारण करने योग्य हार आदि कण्ठ के आभूषणों से, अतिरुचिरं= अत्यन्त शोभायमान, दिव्यविभूषणैः= स्वर्ग में ही प्रयुक्त श्रेष्ठ आभूषणों से, दीप्तं= प्रकाशित, हरिहरब्रह्मादिपीतं= ब्रह्मा रुद्र विष्णु आदि देवों से पान किये गये, ज्योतिर्भास्वत्= सवतःसिद्ध कान्ति से प्रकाशित, ते= आपके, कुचव्याजस्वर्णघटद्वयं= सोने के दो घडों के समान दोनों स्तनों की, भजे= मैं अपने मन में भावना करता हूँ।

व्याख्याः– कस्तूरी जो एक हिरण विशेष का नाभि में पैदा होता है उसका चूर्ण, घनसार यानि कपूर अथवा अगरु का चूर्ण, कुंकुम के बारे में कोशकार कहते है–

"काश्मीरजन्माग्निशिखं वरं बाह्लीकपीतनम्।
रक्तसंकोचपिशुनं धीरलोहितचन्दनम्।।" (अमरः—2.6.124)

ये ग्यारह नाम कुंकुम के है, अतः रक्तचन्दन भी कुंकुम ही है। मणियों के बारे में कहा है विष्णुरहस्य में—

"पृथिव्यां नीलसंज्ञानमद्भ्यो मुक्ताफलानि च।
तेजसः कौस्तुभो जातः वायोर्वैडूर्यसंज्ञकम्।।
पुष्करात्पुष्पराजस्तु वैजयन्त्या हरेरिमे।"

अर्थात् नीलम पृथिवी से, मोती जल से, कौस्तुभ अग्नि से, वैडूर्य वायु से, पुखराज पुष्कर से, ये पांच प्रकार के मणि विष्णु भगवान् की वैजयन्ती माला में पिरोये जाते हैं। परा शक्ति के तेजोमय चैतन्य में प्रतिबिम्बित ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता और सृष्टि परस्पर जन्य जनक भाव से निमित्तकारण होते हैं। ऐसी माया में अतर्क्य अघटित घटनायें होती रहती हैं। यह बात देव्यथर्वशीर्ष, शाक्तोपनिषद्, देवीभागवत आदि ग्रन्थों के अनुसार है। किन्तु अन्य ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, शिव आदि पुराणों, वैष्णवोपनिषदों, शैवोपनिषदों, आदि शास्त्रों से यह भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि से माया उत्पन्न है। इस प्रकार के विषय में लौकिक बुद्धि से समझकर निर्णय करना संभव नहीं है। अतः इस विषय में भी दैवी संकेत यह है कि शाक्तोपासकों को शाक्तशास्त्र एवं शाक्त आगम के वचनों पर विश्वास करके पूर्ण श्रद्धा से भजन करने में ही साधक का भला है।।38।।

अब जगदम्बा के हाथ और कण्ठ के वर्णन पूर्वक ध्यान का विधान करते हैं—

मुक्तारत्नसुवर्णकान्तिकलितैस्ते बाहुवल्लीरहं
केयूरोत्तमबाहुदण्डवलयैर्हस्तांगुलीभूषणैः।
संपृक्ताः कलयामि हीरमणिमन्मुक्ताफलाकीलित—
ग्रीवापट्टविभूषणेन सुभगे कण्ठं च कम्बुश्रियम्।।37।।

पाठभेदः— केयूरांगद। सुभगं।

भावार्थः— हे सुभगे! मुक्ता मणियों से जडे हुये एवं सोने की कान्ति से युक्त, केयूर नामक श्रेष्ठ रत्न युक्त उत्तम बाजुबन्द और वलय से अलंकृत, हाथ की सभी अंगुलियाँ अंगूठियों से सुशोभित तथा आपके शरीर से संपृक्त बाहुरूपी लताओं का मैं ध्यान करता हूँ। हीरा आदि मणियों सहित मुक्ताफल से खचित कण्ठाभरण के कारण कम्बु अर्थात् शंख के समान शोभा को प्राप्त कण्ठ का भी मैं ध्यान करता हूँ।

अन्वितार्थः— हे सुभगे!= हे शोभन ऐश्वर्यवाली!, मुक्तारत्न सुवर्णकान्तिकलितैः= मुक्ता मणियों से जडे हुये एवं सोने की कान्ति से युक्त, केयूरोत्तमबाहुदण्डवलयैः= केयूर नामक श्रेष्ठ रत्न युक्त उत्तम बाजुबन्द और वलय से अलंकृत, हस्तांगुलिभूषणैः= हाथ की सभी अंगुलियाँ अंगूठियों से सुशोभित, ते= आपके, संपृक्ताः= शरीर से लगे हुये, बाहुवल्लीः= वल्ली के समान आजानु लम्बे बाजुओं का, च= और, हीरमणिमन्मुक्तावलीकीलित ग्रीवापट्टविभूषणेन= हीरे आदि मणियों सहित मोतीयों से जडा हुआ गले में धारण किये जानेवाले आभूषण की वजह से, कम्बुश्रियं= शंख के समान शोभा युक्त, (पाठभेद के अनुसार सुभगं= श्रेष्ठ ऐश्वर्य युक्त), कण्ठं= कण्ठ का, अहं= मैं, कलयामि= अपने मन में ध्यान करता हूँ।

व्याख्याः— मणिबन्ध के स्थान पर पहनने योग्य आभूषण को केयूर कहते हैं (आजकल लोग केयूर के बदले हाथ की घडी पहनने लगे हैं)। बाहुदण्ड से यहाँ आजानबाहु लक्षित है, क्योंकि देवी, देवता और महापुरुषों की भुजायें लम्बी होना सामुद्रिक शास्त्र में उत्तम माना गया है। इसी प्रकार वलय और कंकण भी हाथ के आभूषण है तथा अंगुलियाँ अंगूठियों से अलंकृत भी हैं। ग्रीवापट्ट गुलूबन्ध आदि को कहते हैं जिन्हे गले को सटाकर पहना जाता है। कण्ठ का विशेषण कम्बुश्रियं इसलिये दिया गया है क्योंकि शंख पर जिस प्रकार तीन रेखायें होती हैं उसी प्रकार

बडे भाग्यशाली महापुरुषों, देवी और देवताओं के गले पर भी तीन रेखा होती हैं जो सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार एक शुभ लक्षण है। ऐसे नाना प्रकार के आभूषणों और श्रेष्ठ लक्षणों से सुशोभित हैं आपके चार हाथ तथा कण्ठ की अनुपम शोभा जिसे मेरी बुद्धि निरन्तर ध्यान करती रहे ताकि आपका स्वरूप मेरे हृदय में सदा स्थिर हो और सांसारिक विषयों की कोई वासना मुझे न सता सके।।37।।

अब जगदम्बा का कान और नाक का वर्णन पूर्वक ध्यान का विधान करते हैं–

तप्तस्वर्णकृतोरुकुण्डलयुगं माणिक्यमुक्तोल्लस–
द्धीराबद्धमनन्यतुल्यमपरं हैमं च चक्रद्वयं।
शुक्राकारनिकारदक्षममलं मुक्ताफलं सुन्दरं
बिभ्रत्कर्णयुगं नमामि ललितं नासाग्रभागं शिवे।।38।।

पाठभेदः– मपरं।

भावार्थः– हे शिवे! माणिक्य और मुक्ता मणि से चमकते हुये एवं हीरों से जडे हुये स्वच्छ सोने से बनाये गये बडे बडे दो कुण्डल से अलंकृत तथा जिनकी कोई तुलना ही न कर सके ऐसे सोने से बने हुये दो चक्रों से अलंकृत आपके दोनों कानों का मैं ध्यान करता हूँ। शुक्र ग्रह के तेज को फीका करने में समर्थ मुक्ताफल से जडे हुये अत्यन्त सुन्दर नथनियों से अलंकृत आपके नाक का मैं ध्यान करते हुए नमस्कार करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे शिवे!= हे कल्याणस्वरूपिणी!, माणिक्यमुक्तो–ल्लसद्धीराबद्धं= माणिक्य और मुक्ता मणि से चमकते हुये एवं हीरों से जडे हुये, तप्तस्वर्णकृतोरुकुण्डलयुगं= स्वच्छ सोने से बनाये गये बडे बडे दो कुण्डल से अलंकृत, च= और, अनन्यतुल्यं = जिसकी कोई तुलना ही नही है ऐसी, अपरं= दूसरे, हैमं=सोने से बने हुये, चक्रद्वयं= कानों के दो चक्राकार आभूषणों से युक्त, कर्णयुगं= दोनों कानों का, (तथा), शुक्राकारनिकारदक्षं= शुक्र

ग्रह के तेज को फीका करने में समर्थ, अमलं= मल रहित अर्थात् अत्यन्त शुद्ध (पाठभेद के अनुसार–अपरं= दूसरा), ललितं= मन को लुभानेवाले, सुन्दरं= अन्यन्त सुन्दर, मुक्ताफलं= गजमुक्ता मणि युक्त नथनी को, बिभ्रत्= धारण किये हुये, नासाग्रभागं= नाक के अग्रभाग को, नमामि= मन में ध्यान करते हुये मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्याः– हे शिवे! इस संबोधन में प्रयुक्त शिवा शब्द का अर्थ अमरकोश में पर्यायों से दर्शाया है–

''शिवा भवानी रुद्राणी (1.1.37)।

तप्तस्वर्णकृत से सूचित कर रहे हैं कि–

''चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।''

अर्थात् सोने की परीक्षा चार प्रकार से की जाती है– निघर्षण (घिस के), छेदन (काट के), ताप (गरम करके) और ताडन (ठोक पीट के)। इनमें से गरम करके जांच करना सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि असली सोने को आग में तपाने से उसका असली रूप चमक कर निखर जाता है और यदि नकली सोना है तो वह काला हो जाता है। तात्पर्य यह है कि श्रेष्ठ व असली सोने के आाभूषण को धारण किया है। इसी प्रकार, मुक्ताफल का अर्थ यहां गजमुक्ता है, क्योंकि समुद्र में सीप में होनेवाले मोती की मणि तो सर्वत्र सुलभ है किन्तु हाथी के गण्डस्थल में होनेवाली मुक्ता मणि अत्यन्त विरल है। इस श्लोक में उपमा अलंकार का प्रयोग है इसलिये सुन्दरं, अमलं, ललितं, शुक्राकारनिकारदक्षं और हैमं– ये पांच विशेषण कुण्डल और नथनी दोनों के साथ जुडेंगे। हीरे आदि रत्नों से जडे हुये कुण्डल तथा प्राचीन परम्परा के अनुसार दो–दो मोती से जडा हुआ केवल सोने से बनाये हुये कान के ऊपर चक्राकार के आभूषण (जिसे 'चोकडा' कहते हैं) को धारण करने से अत्यन्त शोभा युक्त कान और नथूनी, लवंग, आदि से अलंकृत होकर शोभायमान नासिका को भक्तजन अपने मन में ध्यान करते हुये नमस्कार करते हैं।।38।।

अब जगदम्बा की आँख और दान्त का वर्णन पूर्वक ध्यान

का विधान करते हैं–

उद्यत्पूर्णकलानिधिश्रिवदनं भक्तप्रसन्नं सदा
संफुल्लाम्बुजपत्रचित्रसुषमाधिक्कारदक्षेक्षणं।
सानन्दं कृतमन्दहासमसकृत्प्रादुर्भवत्कौतुकं
कुन्दाकारसुदन्तपंक्तिशशिभापूर्णं स्मराम्यम्बिके।।39।।

पाठभेदः– कान्ति।

भावार्थः– हे अम्बिके! उगते हुये शरदृतु के पूर्णिमा की चन्द्रमा के समान सौन्दर्य युक्त, सर्वदा भक्तों को प्रसन्न करनेवाले, खिले हुये कमलपत्र के चित्र सौन्दर्य को तुच्छ करने में चतुर आँखों से शोभायमान, सदा आनन्द युक्त, मन्द मन्द मुस्कान युक्त, बारम्बार आश्चर्यचकित करनेवाला तथा कुन्द पुष्प की स्वच्छ कान्ति एवं चन्द्र की कान्ति के समान दन्त पंक्ति से युक्त आपके तेजस्वी मुख मण्डल का मैं स्मरण करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे अम्बिके!=हे माते!, उद्यत्पूर्णकलानिधिश्रि–वदनं=उगते हुये शरदृतु के पूर्णिमा की चन्द्रमा के समान सौन्दर्य युक्त, सदा =सर्वदा, भक्तप्रसन्नं =भक्तों को प्रसन्न करनेवाले, संफुल्लाम्बुजपत्रचित्रसुषमाधिक्कारदक्षेक्षणं =खिले हुये कमलपत्र के अतिविलक्षण (पाठभेदानुसार कान्ति के समान) सौन्दर्य को भी तुच्छ करने में चतुर आँखों से शोभा युक्त, सानन्दं =आनन्द युक्त, कृतमन्दहासं=मुस्कुराता हुआ, असकृत् =बारम्बार, प्रादुर्भवत्कौतुकं = आश्चर्यचकित करता हुआ, कुन्दाकारसुदन्तपंक्तिशशिभापूर्णं =चन्द्र की कान्ति के समान कान्ति युक्त दन्त पंक्ति से सुशोभित आपके तेजस्वी मुख मण्डल का, स्मरामि= मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ।

व्याख्याः–'कला तु षोडशो भागः'(अमरकोश 1.3.15), कलानां निधिः कलानिधिः, अर्थात् सोलहवें भाग को कला कहते हैं, ऐसी समस्त कलाओं के आश्रय पूर्णिमा की चन्द्रमा को कलानिधि कहा जाता है। यहाँ श्री शब्द का अर्थ है शोभा। अम्बुज यानि जलज कमल, उसके चित्र यानि अतिविलक्षण (पाठभेदानुसार कान्ति के समान) सुषमा अर्थात् शोभा यानि सौन्दर्य "सुषमा परमा शोभा

कान्तिर्द्युतिश्छविः'' (अमरकोशः 1.3.17) को धिक्कार अर्थात् तुच्छ करने में दक्ष यानि कुशल ईक्षण माने आँखें (''लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षू रक्षिणी'' अमरकोशः 2.6.93) हैं जिसका ऐसा मुख मण्डल।

''कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम्'' (अमरकोशः 1.7.31) इन पर्यायों से कौतुक शब्द को आश्चर्य वाचक बताया है। उक्त प्रकार से मुख सम्बन्धी जो जो अनुपम शोभा संभव हैं उन सब को अपने मुख मण्डल में दर्शा कर आपने समस्त जीवों को दर्शन, स्मरण, ध्यान आदि के द्वारा स्वयं को कृतार्थ कर अपने कल्याण कर लेने का अवसर दिया है।।39।।

अब जगदम्बा के संपूर्ण चेहरे का वर्णन पूर्वक ध्यान का विधान कर रहे हैं–

शृंगारादिरसालयं त्रिभुवनीमाल्यैरतुल्यैर्युतं
सर्वांगीनसदंगरागसुरभिश्रीमद्वपुर्दीपितम्।
ताबूलारुणपल्लवाधरयुतं रम्यं त्रिपुण्ड्रं दध–
द्भालं नन्दनचन्दनेन जननि ध्यायामि ते मंगलम्।।40।।

पाठभेदः– त्रिभुवनैर्माल्यैर।

भावार्थः– हे जननी! शृंगार आदि नौ रस का आलय, तीनों लोकों में अतुल्य पुष्पों से अलंकृत, समस्त अंगों को अत्यन्त सुन्दर व सुगन्धित करनेवाले अंगरागों के लेप से सुशोभित आपका शरीर तेजोमय है। तथा ताम्बूल के लाल रंग से नये कोमल पत्तों के लाल रंग के सदृश होंठों से युक्त और नन्दनवन में उत्पन्न चन्दन के त्रिपुण्ड्र से अलंकृत एवं अत्यन्त मंगलकारी आपके सर्व लावण्य युक्त ललाट से सुशोभित शरीर का मैं ध्यान करता हूँ।

अन्वितार्थः–हे जननि!= हे जगज्जननी!, शृंगारादिरसालयं= शृंगाररस वीररस आदि नौ रसों का आश्रय, अतुल्यैः= अतुलनीय, त्रिभुवनमाल्यैः= तीनों लोकों में विद्यमान पुष्पादि अलंकार सामग्रियों

से, युतं= युक्त, सर्वांगीनसदंगरागसुरभिश्रीमद्वपुः= समस्त अंगों को अत्यन्तसुन्दर व सुगन्धित करनेवाले अंगरागों के लेप से सुशोभित आपका शरीर, दीपितम्= तेजोमय है। तथा ताम्बूलारुण पल्लवाधरयुतं= ताम्बूल के लाल रंग से नये कोमल पत्तों के लाल रंग के सदृश होंठों से युक्त, नन्दनचन्दनेन= नन्दनवन में उत्पन्न चन्दन का, त्रिपुण्ड्रं= त्रिपुण्ड्र नामक तिलक जो, दधत्= धारण किये हुये, मंगलं= मंगलमय, और रम्यं= रमणीय, भालं= ललाट है जिसमें ऐसे आपके शरीर का, ध्यायामि= मैं ध्यान करता हूँ।

व्याख्याः— शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त— ये नौ रस जो साहित्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं वे सब माँ भगवती के मुखमण्डल और शरीर में स्थित हैं। जगद् गुरु आद्य श्रीशंकराचार्यजी ने सौन्दर्यलहरी में आठ रसों का वर्णन किया है

"शिवे शृंगारार्द्रा 1,तदितरजने कुत्सनपरा 2,
सरोषा गंगायां 3,गिरिशचरिते विस्मयवती 4,।
हरादिभ्यो भीता 5, सरसिरुह सौभग्यजननी 6,
सखीषु स्मेरा 7,ते मयि जननि दृष्टिः सकरुणा8।।"

शान्त रस को निर्गुण अवस्था का मानकर सगुण में नहीं दर्शाया है। पुष्पों से स्त्रियों को तीन प्रकार से अलंकृत किया जाता है – देहधार्य माला आदि, शिरोधार्य गजरा आदि और कच (वेणी)धार्य। अंगराग में चन्दन, अगरु, कुंकुम, कर्पूर, मृगमद, कस्तूरी, गोरोचन, आदि होते हैं, जिनसे लेप बनाकर शरीर क विभिन्न अंगों में लगाया जाता है तथा

"कर्पूरमगरुश्चैव कस्तूरीचन्दनं तथा।
कंकोलश्च भवेदेभिः पंचभिर्यक्षकर्दमः।।"

इस श्लोक में उक्त पांच वस्तुओं से बनाये गये रस को यक्षकर्दमरस कहा जाता है जो स्तन आदि विशेष अंगों में लगाया जाता है। उक्त अंगरागों को 64 उपचारों में 14वें उपचार

के रूप में अर्पण किया जाता है– ''ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं चन्दनागरुमृगमदकर्पूरकस्तूरीगोरोचनादिसर्वांगीनविलेपनं कल्पयामि समर्पयामि नमः''। श्री त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजा में जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्यजी ने भी कहा है–

''मातर्भालतले तवातिविमले काश्मीरकस्तूरिका,
कर्पूरागरुभिः करोमि तिलकं देहेऽंगरागं ततः।
वक्षोजादिषु यक्षकर्दम रससिक्ता च पुष्पद्रवैः,
पादौ कुंकुमलेपनादिभिरहं सम्पूजयामि क्रमात्।।''

पृथिवी पर मलयाचल का चन्दन प्रसिद्ध है किन्तु स्वर्गस्थ इन्द्र के उपवन नन्दनवन का चन्दन तो दिव्य और श्रेष्ठ है ही, जिससे भगवती के ललाट पर तिलक लगाया गया दर्शाया है। इस प्रकार शरीर से सम्बन्धित समस्त ललित उपचारों से परिपूर्ण व रमणीय शोभा युक्त माँ भगवती के महामंगलमय शरीर के ध्यान उपासक अन्दर व बाहर अभ्यास करे तो साक्षात्कार अवश्य फलीभूत होगा।।40।।

अब जगदम्बा के वेणी का वर्णन पूर्वक ध्यान का विधान कर रहे हैं–

जातीचम्पककुन्दकेसरमहागन्धोद्गिरत्केतकी
नीपाशोकशिरीषमुख्यकुसुमैः प्रोत्तंसिता धूपिता।
आनीलांजनतुल्यमत्तमधुपश्रेणीव वेणी तव
श्रीमातः श्रयतां मदीयहृदयाम्भोजं सरोजालये।।41।।

पाठभेदः– केसररजोगन्धो।

भावार्थः– हे श्रीमाते! हे कमलालये! आपकी वेणी जाती, चम्पक, कुन्द, केसर नाम के पुष्प और महान उत्कट गन्ध को फैलाने वाले केतकी, नीप (केवडा), अशोक, शीशम, आदि श्रेष्ठ पुष्पों से गुंफित है और सुगन्धी धूप से सुवासित है तथा पूर्णरूप से काले काजल के समान और पुष्पों के रस पीकर उन्मत्त अत्यन्त काले भ्रमर पंक्ति जैसी काली बालोंवाली है आपकी चोटी। ऐसी आपकी वेणी मेरे हृदयकमल में सदा वास करे।

अन्वितार्थः– हे श्रीमातः!= हे श्रीविद्यारूपी माते!, हे सरोजालये!= हे कमलवासिनी!, जातीचम्पककुन्दकेसरमहागन्धोदिग रत्केतकीनीपाशोकशिरीषमुख्यकुसुमैः=जाती, चम्पक, कुन्द, केसर नाम के पुष्प और महान उत्कट गन्ध को फैलाने वाले केतकी, नीप (केवडा), अशोक, शीशम, आदि श्रेष्ठ पुष्पों से; प्रोत्तंसिता= गुथी हुयी, धूपिता=सुगन्धी धूप से सुवासित, आनीलांजनतुल्यमत्तमधुप श्रेणीव= पूर्णरूप से काले काजल के समान अत्यन्त काले और पुष्पों के रस पीकर उन्मत्त अत्यन्त काले भ्रमर पंक्ति जैसी काली बालोंवाली, तव= आपकी, वेणी= सिर की चोटी, मदीयहृदयाम्भोजं = मेरे हृदय कमल में, श्रयतां= सदा निवास करें।

व्याख्याः– सरोजालय शब्द से लक्ष्मी का ग्रहण होने से श्रीमातः शब्द से श्रीविद्या को लिया गया है, जैसे कि कहा है– "लक्ष्मी पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया" (अमरकोशः 1.1.27) तथा महात्रिपुरसुन्दरी की मन्दिर पूजा में "ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं महापद्माटव्यै नमः" मन्त्र एवं आवाहन में

"महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातः एह्येहि परमेश्वरि।।"

मन्त्र का प्रयोग होता है। लोक में जातीपुष्प को मालती, चम्पक को चम्पा, कुन्द को कुन्द जो जाडों में खिलता है, केसर दो प्रकार के हैं – केसरवकुल को मौलश्री और केसरपुन्नाग को देववल्लभ, केतकी को केवडा, नीप को कदम्ब, अशोक को अशोक और शिरीष को शीशम कहते हैं। ये सभी पुष्प अत्यन्त कोमल होते हैं। धूप सदा सुगन्धी द्रव्यों सहित कालागरु युक्त को ही लिया जाता है, जैसे कि उपचार के मन्त्र में कहा गया है– " "ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललितायै कालागरुधूपं परिकल्पयामि समर्पयामि नमः"। उक्त प्रकार से इस श्लोक में माँ भगवती के केशों का संस्कार द्वारा सृजित सौन्दर्य का वर्णन करते हुये सुगन्धित पुष्पों और धूप आदि के सुगन्ध से सुगन्धित तथा भ्रमर सदृश काली एवं अंजन के समान काले रंग के केशों से गुंथा हुआ वेणी को

दर्शाया है जिसका हृदय में ध्यान करने से हृदय में वास करने वाली समस्त पापमय दुर्वासनायें नष्ट होकर, पुण्यमयी सुवासनाओं की अभिव्यक्ति से विशुद्ध अन्तःकरण में वेणी के समान त्रिगुण से गुंथी हुयी वृत्ति ब्रह्माकार होकर भक्त कृतार्थ हो जाता है।।41।।

अब जगदम्बा के सिर का वर्णन पूर्वक ध्यान का विधान करते हैं–

लेखालभ्यविचित्ररत्नघटितं हैमं किरीटोत्तमं
मुक्ताकांचनकिंकिणीगणमहाहीरप्रबद्धोज्ज्वलम्।
चंचच्चन्द्रकलाकलापमहितं देवद्रुपुष्पार्चितै–
र्माल्यैरम्ब विलम्बितं सशिखरं बिभ्रच्छिरस्ते भजे।।42।।

पाठभेदः– खचितम्। ललितं।

भावार्थः– हे अम्ब! पंक्तियों से युक्त भिन्न भिन्न कान्तिवाले चित्र विचित्र रत्नों से जडे हुये, गजमुक्ता और सोने की घुंघुरीयों (क्षुद्र घंटिकाओं) से भरपूर एवं अमूल्य हीरों से जडे रहने के कारण अत्यन्त उज्ज्वल और चमकती हुयी संपूर्ण प्रकाश युक्त चन्द्रमा की किरण समूह के शुभ्र प्रकाश से सुशोभित तथा कल्पवृक्ष के पुष्पों से पूजित एवं श्रेष्ठ पुष्पों से गूंथे गये पुष्प मालाओं की लटकनियों से सुशोभित शिखराकार श्रेष्ठ मुकुट को धारण किये हुये आपके सिर का मैं ध्यान करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे अम्ब!=हे माता!, लेखालभ्यविचित्ररत्नघटितं = पंक्तियों से युक्त भिन्न भिन्न कान्तिवाले चित्र विचित्र रत्नों से जडे हुये, मुक्ताकांचनकिंकिणीगणमहाहीरप्रबद्धोज्ज्वलम्= गजमुक्ता और सोने की घुंघुरीयों (क्षुद्र घंटिकाओं) से भरपूर एवं अमूल्य हीरों से जडे रहने के कारण अत्यन्त प्रकाशमान्, चंचच्चन्द्रकलाकलापमहितं =चमकती हुयी संपूर्ण प्रकाश युक्त चन्द्रमा की किरण समूह के शुभ्र प्रकाश से सुशोभित, देवद्रुपुष्पार्चितैः =देवताओं के कल्पवृक्ष के फूलों से पूजित माल्यैः=श्रेष्ठ पुष्पों

से गूंथे गये पुष्प मालाओं की, विलम्बितं=लटकनियों से सुशोभित, हैमं=सोने से बने हुये, सुशिखरं=सुन्दर शिखर आकार के, किरीटोत्तमं= श्रेष्ठ मुकुट को, बिभ्रत्= धारण किये हुये, ते= आपके, शिरः=सिर यानि मस्तक का, भजे=मैं भजन करता हूँ।

व्याख्याः—लेखा शब्द का अर्थ पंक्ति है, जैसे कि कहा है—

"पंक्तिः श्रेणी लेखास्तु राजयः" (अमरकोशः 2.4.4)

और लभ्यं शब्द का युक्त यानि न्यायसंगत, जैसे कि कहा है—

"युक्तमौपयिकं लभ्यं भजमाना विनीतवत्" (अमरः2.8.24)। चन्द्रकलाकलापमहितं अथवा ललितं शब्द से महात्रिपुरसुन्दरी के सिर पर विराजती चन्द्रकला को दर्शित किया है, जैसे की ध्यान श्लोक में कहा है— "चतुर्भुजे चन्द्रकलावतंसे", यहाँ अवतंस शब्द का अर्थ है सिरका शेखर क्योंकि कोश में कहा है— "पुंस्युत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरे च शेखरे।" (अमरकोशः 3.3.127)। माल्यैः पद से अनेक प्रकार के पुष्पों से गूंथे गये माला और लटकनियों को लिया गया है, क्योंकि 'कोश में कहा है—

"माल्यं माला स्रजो मूर्ध्नि केशमध्ये तु गर्भकः।"(अमरः2.6.135)

उक्त प्रकार के श्रेष्ठ व दिव्य वस्तुओं से अलंकृत माँ भगवती के मुकुट को अनुपम और दैवी संपत् से युक्त करके वर्णन कर ध्यान करने को कहा हैं। मनुष्य मात्र के मस्तक के ऊपरी भाग को (जहाँ चोटी रखी जाती है) ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। वहाँ सदा दैवी प्रकाश व्याप्त रहता है। जैसे चन्द्र की ज्योत्स्ना के योग में चन्द्रकान्त मणि से शीतल जल बिन्दु का स्राव होता है वैसे ही ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्रार चक्र से अमृत का स्राव होता है जिसे योगीजन खेचरी मुद्रा से पान करके तृप्त होते हैं। उस सहस्रार चक्र में परमात्मा का स्वरूप प्रकाशित हो रहा है, जिसमें वृत्तियों के एकाग्र होने से परमानन्द घनस्वरूप जीवब्रह्मैक्य भाव की अलौकिक दशा को प्राप्त कर लौकिक प्रपंच जाल से मुक्त होता है। इस स्थिति को प्राप्त करने केलिये ही माँ भगवती के

मस्तक का ध्यान करने का विधान किया गया है। ऐसी स्थिति को प्राप्त सन्त और भक्त जनों को सत्कीर्ति लोक प्रसिद्ध है।।42।।

अब जगदम्बा के छत्र, चामर आदि के वर्णन पूर्वक ध्यान का विधान करते हैं–

उत्क्षिप्तोच्चसुवर्णदण्डकलितं पूर्णेन्दुबिम्बाकृति–
च्छत्रं मौक्तिकचित्ररत्नखचितं क्षौमांशुकोत्तंसितम्।
मुक्ताजालविलम्बितं सकलशं नानाप्रसूनार्चितं
चन्द्रोड्डामरचामराणि दधते श्रीदेवि ते स्वश्रियः।।43।।

भावार्थः– हे श्री देवी! आपके सिर के ऊपर जो छत्र (छाता) खोल कर धारित है वह श्रेष्ठ सोने के दण्ड से सुशोभित, पूर्णिमा के चन्द्र के समान आकारवाला, मौक्तिक आदि अनेक विचित्र रत्नों से खचित व रेशमी वस्त्र से आच्छादित होने से और कलश युक्त होने से अत्यन्त शोभनीय है। इसी प्रकार आपके दोनों तरफ जो चामर और व्यजन (छँवर और पंखा) से सेवा की जा रही है वे चाँवर आदि मुक्ता मणि के जालरूपी लटकनियों से विरचित, नाना प्रकार के पुष्पों से अर्चित तथा चन्द्र की कान्ति के समान उज्ज्वल हैं। अपने इन सब ऐश्वर्य और सौन्दर्य से सुशोभित आपका मैं ध्यान करता हूँ।

अन्वितार्थः– हे श्री देवि!= हे सर्वैश्वर्य युक्त देवी!, (आपके सिर के ऊपर) उत्क्षिप्तोच्चसुवर्णदण्डकलितं= खोल कर धारित एवं ऊँचे सोने के दण्ड से सुशोभित, पूर्णेन्दुबिम्बाकृति= पूर्णिमा के चन्द्र के समान आकारवाला, मौक्तिकचित्ररत्नखचितं= मौक्तिक आदि अनेक विचित्र रत्नों से खचित, क्षौमांशुकोत्तंसितं= पतले रेशमी वस्त्र से आच्छादित, सकलशं= कलश युक्त, छत्रं= छाता, (और) मुक्ताजालविलम्बितं= मुक्ता मणि के जालरूपी लटकनियों से विरचित, नानाप्रसूनार्चितं= नाना प्रकार के पुष्पों से अर्चित, चन्द्रोड्डामर चामराणि= चन्द्र की कान्ति के समान उज्ज्वल छँवर और पंखा से सुशोभित, ते= आपके, स्वश्रियः= अपने ही ऐश्वर्य को, दधते= आप धारण करते हैं। उसका मैं ध्यान करता हूँ।

व्याख्याः– सिंहासन पर लगा हुआ छाता तथा पंखा और चाँवर का वर्णन मन्द अधिकारी के दृष्टिकोण से बाह्य पूजा के लिये हैं, मध्यम अधिकारी के दृष्टिकोण से ध्यान केलिये है और उत्तम अधिकारी के दृष्टिकोण से जीव और ब्रह्म के ऐक्यत्व का संपादन करने के लिये है। अतः इसका तात्पर्य यह है कि अलौकिक पूर्ण वैभव समूह के कारण परिपूर्ण कान्ति से युक्त छत्र चामर आदि की कान्ति का आपकी अपनी कान्ति के साथ ऐक्यता का वर्णन इसलिये विधान किया है ताकि उपासक भी अपनी देह के अन्तर्गत अनुभूत चैतन्य का परा शक्ति माँ भगवती के साथ ऐक्यता का निश्चय पूर्वक ध्यान कर अनुभव करें। जैसे कि भगवद्‌गीता में भी कहा है–

"यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जिमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसमुद्भवम्।।"(गीता10.41)

अर्थात् जो जो विशिष्ट ऐश्वर्यवाली वस्तु है अथवा लक्ष्मी सहित है अथवा उत्साह युक्त है उन सबको तुम मेरे तेज के ही अंश से प्रकट हैं ऐसे जानो। तात्पर्य यह है कि जैसे समुद्र और तरंग में वास्तविक भेद नहीं होता उसी प्रकार अंश और अंशी में भी भेद नहीं होता है।

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" (गीता 15.07)

अर्थात् इस जीवलोक में जो जीव रूप से दिखाई दे रहे हैं वे मेरे ही अंश है, इसलिये वे सनातन है यानि नित्यमुक्त है। इस अंशांशीभाव को 'स्वश्रियः' शब्द से लक्षित किया है।।43।।

अब जगदम्बा के संपूर्णशरीर का तात्त्विक स्वरूप के वर्णन पूर्वक ध्यान का विधान कर रहे हैं–

विद्यामन्त्ररहस्यविन्मुनिगणैः क्लृप्तोपचारार्चनां
वेदादिस्तुतिगीयमानचरितां वेदान्ततत्त्वात्मिकां।
सर्वास्ताः खलु तुर्यतामुपगतास्त्वद्रश्मिदेव्यः परा–
स्त्वां नित्यं समुपासते स्वविभवैः श्रीचक्रनाथे शिवे।।44।।

भावार्थः—हे श्रीचक्रनाथे! हे शिवे! विद्या और मन्त्र के रहस्य को जाननेवाले मुनि गणों द्वारा प्रसिद्ध 64 उपचारों से जिनकी अर्चना की जाती है, वेदादि शास्त्रों के द्वारा अनेक स्तुतियों में जिनके चरित्र का वर्णन किया गया है और जो वेदान्त में लक्षित तत्त्व रूपा हैं ऐसी आपकी नित्य ही अपने अपने वैभव के अनुसार सभी देवियां उपासना करती हैं जो निश्चय ही सूर्य की रश्मियों के समान आपकी माया शक्ति से ही आपके अंश रूप से सृजित हैं वे सब तुर्य भाव को प्राप्त हो गये यानि आप से अभिन्न हो गये हैं।

अन्वितार्थः— हे श्रीचक्रनाथे!= हे श्रीचक्र की स्वामिनी!, हे शिवे!= हे कल्याणस्वरूपिणी!, विद्यामन्त्ररहस्यविन्मुनिगणैः = विद्या और मन्त्र के रहस्य को जाननेवाले मुनि गणों द्वारा, क्लृप्तोपचारा–र्चनां = प्रसिद्ध 64 उपचारों से जिनकी अर्चना की जाती है, वेदादिस्तुतिगीयमानचरितां = वेदादि शास्त्रों के द्वारा अनेक स्तुतियों में जिनके चरित्र का वर्णन किया गया है और वेदान्ततत्त्वात्मिकां = जो वेदान्त में लक्षित तत्त्व रूपा हैं, ऐसी त्वां = आपकी, नित्यं = सदा, त्वद्रश्मिदेव्यः = सूर्य की रश्मियों के समान आपकी माया शक्ति से ही आपके अंश रूप से सृजित सभी देवियाँ, स्वविभवैः = अपने अपने वैभव के अनुसार, समुपासते = उपासना करते हैं, खलु = इसलिये निश्चित रूप से, ताः = वे, पराः = श्रेष्ठ, सर्वाः = सभी, तुर्यताम् = तुरीयभाव को, उपगताः = प्राप्त हो गये अर्थात् आपसे अभिन्न हो गये हैं।

व्याख्याः— श्रीचक्र में संपूर्ण विश्व व्याप्त है, ऐसे विश्वरूप श्रीचक्र में अधिष्ठित शिव अभिन्न माँ भगवती को मन्त्र, तन्त्र आदि विद्या के पारंगत महामुनियों तथा सूर्य की रश्मियों के समान माँ भगवती की ही विलासरूपिणी योगिनियों द्वारा पूजा, अर्चना, उपासना, ध्यान आदि क्रियाओं से आपका नित्य निरन्तर भजन किया गया, फलस्वरूप वे सब तुरीयपद को प्राप्त हो गये। क्योंकि वेदादि शास्त्रों के द्वारा अनेक स्तुतियों में आपके चरित्र

का वर्णन किया गया है और आप ही वेदान्त में लक्षित तत्त्व स्वरूपा है। वेदान्त में 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि' और 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इन महावाक्यों के द्वारा जीव और ब्रह्म का ऐक्यत्व ही लक्षित है। अतः समस्त कर्म, उपासना और ज्ञान आदि साधनों का लक्ष्य क्रम से अथवा साक्षात् केवल ऐक्यत्व की अनुभूति ही है।।44।।

उक्त माँ त्रिपुरा क स्वरूप का ध्यान करने का फल बता रहे हैं–

एवं यः स्मरति प्रबुद्धसुमतिः श्रीमत्स्वरूपं परं
वृद्धोऽप्याशु युवा भवत्यनुपमः स्त्रीणामनंगायते।
सोऽष्टैश्वर्यतिरस्कृताखिलसुरश्रीजृम्भणैकालयः
पृथ्वीपालकिरीटकोटिवलभीपुष्पार्चितांघ्रिर्भवेत्।।45।।

भावार्थः– उक्त प्रकार से (निर्गुण अथवा सगुण रूप से) जो विवेकी साधक (कृत कर्म एवं उपासना के अनुसार जागृत है बुद्धि जिसकी) जगदम्बा के परमोत्कृष्ट समस्त ऐश्वर्य संपन्न स्वरूप का नित्य स्मरण करता है, वह वृद्ध हो तो भी शीघ्र ही युवा हो जाता है (युवा अवस्था के समान सामर्थ्य प्राप्त करता है), अनुपम सौन्दर्य प्राप्त होने से स्त्रियों को कामदेव के समान भासित होता है, समस्त देवताओं के ऐश्वर्य के प्रभाव को तिरस्कृत कर अणिमा आदि आठ सिद्धियों का आलय बनता है और उसका चरण राजाओं के करोडों मुकुट के प्रान्त भाग में लटके हुये पुष्पों के समूह से पूजित होगा।

अन्वितार्थः– प्रबुद्धसुमतिः = जिसकी सद्बुद्धि जाग्रत हो गयी है ऐसा, यः =जो उपासक, एवं= पूर्वोक्त प्रकार से, परं= श्रेष्ठ, श्रीमत्स्वरूपं= सर्वैश्वर्य युक्त आपके स्वरूप को, स्मरति= स्मरण करता है, सः = वह, वृद्धोऽपि= वृद्ध होते हुये भी, युवा= जवान के समान शक्ति व सामर्थ्यवाला, भवति= हो जाता है, अनुपमः= उपमा रहित सौन्दर्यवाला होने से, स्त्रीणाम्= स्त्रियों

के मन को वह, अनंगायते = कामदेव के समान भासित होता है, अष्टैश्वर्यतिरस्कृताखिलसुरश्रीजृम्भणैकालयः = अणिमा आदि आठ सिद्धि रूपी ऐश्वर्य से समस्त देवताओं के ऐश्वर्य के प्रभाव को तिरस्कृत कर ऐश्वर्य विस्तार का आलय हो जाता है, तथा पृथ्वीपालकिरीटकोटिवलभिपुष्पार्चितांघ्रिः = उसका चरण राजाओं के करोडों मुकुट के प्रान्त भाग में लटके हुये पुष्पों के समूह से पूजित, भवेत् = होगा।

व्याख्याः— यहाँ प्रबुद्धसुमतिः शब्द से बताना चाहते हैं कि सुमति यानि सद्बुद्धि के प्रबुद्ध होने का तात्पर्य है कि सांसारिक सुखों से विमुख होकर आपकी उपासना की श्रेष्ठता को समझकर आपकी उपासना में ही बुद्धि लगे रहना, ऐसी बुद्धिवाला जो साधक है वही उक्त समस्त फल को प्राप्त करेगा। परं श्रीमत्स्वरूपं शब्दों से भगवती के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूप लक्षित है क्योंकि पूर्व में दोनों का वर्णन किया गया है और यह अधिकारी भेद से आवश्यक भी है।

"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः।।"
(सर्वलक्षणसंग्रहः और सांख्य–योगकोशः)

ये आठ सिद्धियाँ हैं जिनके सामर्थ्य से साधक की मुट्ठी में संसार होता है, लेकिन ये मुक्ति में बाधक हैं जैसे की कहा है योगसूत्र में

"ते समाधावन्तराया व्युत्थाने सिद्धयः" (यो.सू.3.37)

(पाठभेदः— समाधावुपसर्गा) अर्थात् वे समाधि में विघ्न ही है भले ही व्यवहार में सिद्धि हो। इन से वैराग्य के विना अन्य देवताओं की उपासना हो नही सकता और अन्य देवताओं की उपासना के विना श्रीविद्या की उपासना संभव नही, इसलिये ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है—

"येनान्यदेवतानामकीर्तितं जन्मकोटिषु।
तस्यैव भवति श्रद्धा श्रीदेवीनामकीर्तने।।"

और यह मुमुक्षु में ही संभव है, इस बात को दर्शाते है इन श्लोकों में–

"चरमे जन्मनि तथा श्रीविद्योपासको भवेत्।" और
"यस्य नो पश्चिमजन्म यदिव शंकरः स्वयं।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पंचदशाक्षरी।।"

क्योंकि मोक्ष का साधन केवल श्रीविद्या यानि ब्रह्मविद्या ही है, जैसे कि कहा है–

"इति मन्त्रेषु बहुधा विद्याया महिमोच्यते।
मोक्षैकहेतुविद्या तु श्रीविद्यैव न संशयः।।"

यद्यपि भले ही श्री पराम्बा की उपासना से परम भक्त को ऊपर दर्शित ऐहिक सुख प्राप्त होता है और अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ जो प्राप्त हुयी है उनसे जिस समय जो भी इच्छा हो वह उसी समय उसे प्राप्त कर लेता है। जिससे उस केलिये स्वर्गस्थ देवों का वैभव भी तुच्छ हो जाता है। तथा राजालोग उसके चरणों पर मस्तक झुकाते हैं जिससे उनके मुकुट पर लगे पुष्प उसके चरणों पर गिरते हैं। ऐसे महान ऐश्वर्य की प्राप्ति और प्राप्त ऐश्चर्य की समृद्धि माँ की कृपा से होती है। तथापि विवेकी साधक को इन ऋद्धि सिद्धि आदि ऐश्वर्य के चक्कर में न पडकर मोक्ष को ही अपनी साधना का लक्ष्य बना लेना चहिये।45।।

यह 46वां श्लोक अत्यष्टि छन्द की प्रजाति हरिणी छन्द में है, जिसका लक्षण है–"नसमरसलगाः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मतः।" 6,4,7 का विभाग कर पाठ करना होता है। यहाँ से 50वें श्लोक तक माँ त्रिपुरा से धारित अस्त्र शस्त्र का वर्णन कर उनका ध्यान करने के फल का विधान करते हैं। दक्षिणामूर्तिसंहिता में माँ के आयुधों के बारे में लिखा है–

"दक्षिणाधः करे बाणान् वामाधस्तु शरासनम्।
वामोर्ध्वे पाशमारक्तं दक्षोर्ध्वे तु सृणिं परम्।।"

अर्थात् नीचे की ओर झुके दाहिने हाथ में बाणों को और बायें हाथ में धनुष है। ऊपर की ओर स्थित दाहिने हाथ में पाश

और बायें हाथ में अंकुश है। इसी प्रकार ललितासहस्रनाम में भी चारों आयुधों के बारे में कहा है–

''रागस्वरूपपाशाख्या क्रोधाकारांकुशोज्ज्वला।
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पंचतन्मात्रसायका।।''

अर्थात् चित्त की वृत्तिविशेष राग, इच्छा और वासना ही पाश है जो ऊपर के बायें हाथ में है, चित्त की वृत्तिविशेष क्रोध और द्वेष ही अंकुश है जो ऊपर के दाहिने हाथ में है, चित्त के वृत्तिविशेष संकल्पविकल्पात्मक मन ही धनुष है जो नीचे के बायें हाथ में है और पंचभूतों की तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) ही बाण हैं जो नीचे के दाहिने हाथ में हैं। उनमें से सर्व प्रथम धनुष का वर्णन करते हैं–

अथ तव धनुः पुण्ड्रेक्षुत्वात्प्रसिद्धमतिद्युति–
स्त्रिभुवनवधूमुद्यज्ज्योत्स्नाकलानिधिमण्डलम्।
सकलजननि स्मारं स्मारं गतः स्मरतां नर–
स्त्रिभुवनवधूमोहाम्भोधेः प्रपूर्णविधुर्भवेत्।।46।।

पाठभेदः – पुण्ड्रेक्षुकृत् इति।

भावार्थः– हे सकलजननी! आपका अत्यन्त शोभा युक्त मोटे गन्ने के दण्ड से बना धनुष जो तीनों लोकों की स्त्रियों केलिये पूर्णिमा के चन्द्रमा के प्रकाश जैसा बन जाता है और उन्हें क्षुब्ध कर देता है, यह अत्यन्त प्रसिद्ध है। अतः मनुष्य आपके धनुष का बारम्बार निरन्तर ध्यान करता हुआ कामदेव के समान होकर तीनों लोक की स्त्रियों को आकर्षित कर उनके हृदय रूपी मोह सागर को क्षुब्ध करने में पूर्ण चन्द्र के समान हो जाता है।

अन्वितार्थः–हे सकलजननि!=हे संपूर्ण स्थावर जंगम की जननी!, तव=आपके, पुण्ड्रेक्षुत्वात् =पुण्ड्रेक्षु यानि पोंडा गन्ना (गन्ने की एक प्रजाति है) से बना हुआ होने से, अतिद्युतिः=अत्यन्त शोभा अथवा दीप्ति युक्त, धनुः=धनुष, त्रिभुवनवधून्=तीनों लोकों की स्त्रियों को, उद्यज्ज्योत्स्नाकलानिधिमण्डलं =उगते हुये ही

फैलती चन्द्रिकावली यानि चन्द्रमा का प्रकाश मण्डल मोहित करने के समान है, प्रसिद्धं =यह बात अत्यन्त प्रसिद्ध है, (ऐसे धनुष का) नरः =मनुष्य, स्मारं स्मारं =निरन्तर स्मरण करने से, स्मरतां गतः = कामदेव के समान सौन्दर्य को प्राप्त करके, त्रिभुवनवधूमोहाम्भोधेः = तीनों भुवनों की स्त्रियों के मोह रूपी समुद्र को बढाने में, प्रपूर्णविधुः = शरदृतु की पूर्णिमा का पूर्णचन्द्र जैसा, भवेत् = हो जायेगा।

व्याख्याः—सकलजननी का अर्थ है संपूर्ण जगत का कारण भूता देवी। पुण्ड्रेक्षु यानि पोंडा गन्ना, यह गन्ने के एक प्रजाति विशेष है जो साधारण गन्ने की अपेक्षा ज्यादा मोटा होता है। द्युति का शोभा और दीप्ति दोनों अर्थ अमर कोश में लिखा है—

''भाश्छविद्युतिदीप्तयः''(1.4.34) और

''शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः'' (1.3.17)।

धनुष की उपमा चन्द्रमा से दो दृष्टि से की गयी है— स्वभाव और आकार। चन्द्रमा का स्वभाव है मोहित कर विरह वेदना को बढाना और पूर्णिमा के दिन चन्द्र का आकार गोल है। भगवती के हाथ में विद्यमान धनुष की भी सामर्थ्य यह है कि उसका ध्यान करनेवाला कामदेव के समान होकर तीनों लोकों की स्त्रियों (सुर, नर और नागकन्या) को भी मोहित व आकर्षित करने में समर्थ हो जाता है यानि उसे देखकर वे कामातुर हो जाती हैं और बाण चढाकर खींचने से गोलाकार भी हो जाता है। भावनोपनिषद् में धनुष में मन की भावना की गयी है—

''मन इक्षुधनुः''।

तात्पर्य यह है की देवी के धनुष में स्थित शक्ति के चमत्कार का वर्णन ऐसा किया है कि धनुष का नित्य निरन्तर स्मरण करने से त्रिभुवन की स्त्रियों का हृदयस्थ मोहसागर उसी प्रकार क्षुब्ध हो जाता है जिस प्रकार शरदृतु के पूर्णिमा का चन्द्रमा से समुद्र में ज्वार भाटा उठते हैं। अर्थात् वह मनुष्य चन्द्र के समान तेजस्वी होता है किन्तु स्वयंप्रकाश होने से मोहान्धकार को नाश कर ज्ञान रूप प्रकाश हो जाता है।।46।।

यह 47वां श्लोक अत्यष्टि छन्द की प्रजाति पृथ्वी छन्द में है, जिसका लक्षण है– "जसौ जसयला सवुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।" 8,9 का विभाग कर पाठ करना होता है। अब बाणों का वर्णन कर ध्यान का फल बता रहे हैं–

प्रसूनशरपंचकप्रकटजृम्भणागुम्फितं
त्रिलोकमवलोकयत्यमलचेतसा चंचलम्।
अशेषतरुणीजनस्मरविजृम्भणे यः सदा
पटुर्भवति ते शिवे त्रिजगदंगणाक्षोभणे।।47।।

पाठभेदः– चिन्तयन्।

भावार्थः– हे शिवे! तीनों लोकों को चंचल करता हुआ आपके हाथ में स्थित (कामदेव के हाथ में प्रसिद्ध) पाँच पुष्प बाण के विकास को चारों तरफ फैलकर गुँथते हुये को जो साधक शुद्ध मन से विचार करते हुये अवलोकन करता है वह इस लोक की समस्त स्त्रियों में काम को बढाने ही नहीं बल्कि तीनों लोकों की स्त्रियों में काम को जागृत कर क्षोभ उत्पन्न करने में चतुर अर्थात् सक्षम हो जाता है।

अन्वितार्थः– हे शिवे!=हे कल्याणस्वरूपे!, त्रिलोकं=तीनों लोकों को, चंचलं=चंचल करता हुआ, ते=आपके (हाथ में स्थित), प्रसूनशरपंचकप्रकटजृम्भणागुम्फितं=फूलों के पांच बाण स्पष्टरूप से विकसित होकर चारों तरफ फैलकर गुँथते (सब को काम वासना से बाँधते) हुये को, यः=जो साधक, अमलचेतसा=शुद्ध अन्तःकरण से, (पाठभेद के अनुसार–चिन्तयन्=विचार करते हुये), अवलोकयति= अवलोकन करता है (ध्यान करता है), (सः= वह), अशेषरमणीजनविजृम्भणे= (इस लोक के) संपूर्ण स्त्रीजन में काम को बढाने में (ही नहीं बल्कि), त्रिजगदंगनाक्षोभणे= तीनों लोकों की स्त्रियों में काम को जागृत कर क्षोभ उत्पन्न करने में, सदा= नित्य ही, पटुः= चतुर यानि समर्थ, भवति= होता है।

व्याख्याः– पांच पुष्प बाण का वर्णन तन्त्रराज में इस प्रकार किया है–

"कमलं कैरवं रक्तकह्लारेन्दीवरे तथा।
सहकारमिति प्रोक्तं पुष्पपंचकमीश्वरी।।"

अर्थात् हे ईश्वरी! सूर्य से विकसित पीले रंग के ब्रह्म कमल, चन्द्र से विकसित कुमुद यानि सफेद कमल, लाल कमल, नील कमल और आम के पेड की मंजरि, इन्हीं पांच पुष्पों को आपके हस्थगत पांच बाण कहा गया है। उन बाणों का नाम उनके गुण के अनुरूप इस प्रकार है–

''क्षोभणो द्राविणो देवि तथाऽऽकर्षणसंज्ञकः।
वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि।।''

अर्थात् हे देवी हे परमेश्वरी क्रम से बाणों का नाम है क्षोभण (चित्त में क्षोभ उत्पन्न करनेवाला), द्रावण (हृदय को द्रवित करनेवाला), आकर्षण (अपनी ओर खींचनेवाला), वश्य (वशीभूत करनेवाला) और उन्माद (भ्रमित करनेवाला)। पूर्व श्लोक में धनुष को ''सर्वसम्मोहन'' बता कर इस श्लोक में बाणों को ''सर्वजृम्भण'' नाम से कहा है अर्थात् धनुष से सम्मोहन होता है और बाण से काम दीप्त होता है। इसलिये आयुध पूजा के मन्त्र में ऐसे प्रयोग है – ''...सर्वसम्मोहनाभ्यां कामेश्वरकामेश्वरीभ्यां धनुर्भ्या...'' और ''...सर्वजृम्भणेभ्यः कामेश्वरकामेश्वरीभ्यो बाणेभ्यो...''। तात्पर्य यह है की माँ भगवती के हस्तगत बाणों के प्रभाव क वर्णन में यह दर्शा रहे हैं कि पुष्प बाण के विकास अर्थात् कामना से ही जगत गुंथित है, जिसमें जकडे लोग जगत को सत्य मानते हैं किन्तु जो आपके भक्तजन विवेक बुद्धि से जगत को नश्वर मानते हैं वे माया के विकास और माया से कल्पित काम वासनाओं को तथा ज्ञान रूपी साधन से भोग को निर्बल करने में दक्ष होते हैं, इसलिये तुच्छ जगत और महा मोहात्मक प्रपंच जाल को तटस्थ होकर द्रष्टा बनकर अनुभव करने में चतुर अर्थात् सक्षम होते है।।47।।

यह 48वां श्लोक वसन्ततिलका छन्द के प्रजाति उद्घर्षिणी छन्द में है, जिसका लक्षण है–''उक्ता वसन्ततिलका तभजाःजगौ गः।'' 8,6 का विभाग कर पाठ करना होता है। अब पाश का वर्णन कर ध्यान का फल बताते हैं–

पाशं प्रपूरितमहासुमतिप्रकाशो

यो वा तव त्रिपुरसुन्दरि सुन्दरीणाम्।
आकर्षणेऽखिलवशीकरणे प्रवीणं
चित्ते दधाति स जगत्त्रयवश्यकृत्स्यात्।।48।।

पाठ भेदः – प्रशरित इति।

भावार्थः– हे त्रिपुरसुन्दरी! संपूर्णरूप से विवेकशालिनी बुद्धि प्रकाशित यानि जागृत है जिसकी ऐसा जो साधक आपके हस्तगत पाश का चित्त में ध्यान करता है वह सुन्दर स्त्रियों को आकर्षण करने एवं सभी को वशीकरण करने में निपुण होता है, इतना ही नहीं, वह तीनों लोकों को वश कर लेनेवाला होता है।

अन्वितार्थः– हे त्रिपुरसुन्दरि!= हे त्रिपुरसुन्दरी!, प्रपूरितमहा सुमतिप्रकाशः= संपूर्णरूप से विवेकशालिनी बुद्धि प्रकाशित यानि जागत है जिसको ऐसा, यः= जो साधक, तव= आपके, पाशं= हाथ में स्थित पाश को, चित्ते= हृदय में, दधाति= धारण करता है यानि ध्यान करता है, स= वह, सुन्दरीणां= रमणीय स्त्रियों का, आकर्षणे= अपनी ओर आकर्षण करने में, (तथा) अखिलवशीकरणे = सभी को अपने वश में कर लेने में, प्रवोणं= निपुण होता है, (इतना ही नहीं, बल्कि वह) जगत्त्रयवश्यकत्= तीनों लोकों को अपने वश में कर लेनेवाला, स्यात्= होवेगा। वा= इस श्लोक में इस शब्द का कोई अर्थ नहीं अर्थात् वाक्यालंकार में प्रयोग किया गया है ताकि छन्द न बिगडे और गायन में सुविधा हो।

व्याख्याः– प्रपूरित शब्द से प्रकृष्ट रूप से भरा हुआ अर्थ ज्ञात होता है जब कि पाठभेद के अनुसार प्रशरित शब्द का प्रकृष्ट रूप से हिंसित अर्थ महामति के साथ अन्वय नहीं हो सकता है, अतः प्रशरित पाठ अनुचित लगता है। सुन्दरी शब्द का अर्थ केवल शरीर से सुन्दर ही नहीं अपितु रमणीय है अर्थात् रमण करने योग्य भी है, इसलिये अमरकोश में लिखा है–

"सुन्दरी रमणी रामा" (1.6.4)।

प्रवीण शब्द निपुण अर्थ में प्रसिद्ध है ओर अमरकोश में कहा है–

"प्रवीणे निपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिताः"।

तात्पर्य यह है कि जिस साधक की बुद्धि विवेक विचार से सत्यासत्य को समझनेवाली होगी वह मायारूपी स्त्रियों को आकर्षण करने में अथवा माया कल्पित विविध प्रपंच जाल को वशीकरण करने में निपुण होता है किन्तु यदि ज्ञानरूपी पाश को हृदयमें धारण करें यानि ध्यान करे तो माया वश से मुक्त होकर त्रिलोक को अपने वश में कर लेता है अर्थात् उनके बन्धन में न आकर अपने आत्म स्वरूप में ही उनको लीन कर लेता है।।48।।

यह 49वां श्लोक, अतिजगती छन्द के प्रजाति प्रहर्षिणी छन्द में है, जिसका लक्षण है–"त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।" 3,10 का विभाग कर पाठ करना होता है। अब अंकुश का वर्णन कर ध्यान का फल बताते हैं–

यः स्वान्ते कलयति कोविदस्त्रिलोकी–
स्तम्भारम्भणचणमत्युदारवीर्यम्।
मातस्ते <u>विजयनिजांकुशं</u> सयोषा
देवांस्स्तम्भयति भूभुजोऽन्यसैन्यम्।।49।।

पाठभेदः– विजयमहांकुशं।

भावार्थः– हे माते! जो कार्य करने में कुशल यानि दक्ष उपासक अपने हृदय में स्वर्ग, पृथिवी और पाताल तीनों लोकों के निवासियों को स्तम्भित करने में विख्यात व अत्यन्त पराक्रमी सदैव विजय प्रदायक आपके अपनी शक्तिशाली अंकुश का ध्यान करता है वह स्वर्ग निवासी देवियों सहित देवों, पृथिवी के समस्त राजाओं और शत्रुओं की सेना को स्तम्भन करने में समर्थ हो जाता है।

अन्वितार्थः– हे मातः= हे माते!, यः= जो उपासक, कोविदः = कार्य करने में कुशल यानि दक्ष है, स्वान्ते= अपने हृदय में, ते = आपका, त्रिलोकीस्तम्भारम्भणचणं= स्वर्ग, पृथिवी और पाताल तीनों लोकों के निवासियों के स्तम्भन का आरम्भ करने में विख्यात, अत्युदारवीर्य= अत्यन्त पराक्रमी, (एवं) विजयनिजांकुशं = सदैव विजय प्रदायक आपके अपने शक्तिशाली अंकुश का

(पाठभेद के अनुसार आपके महान अंकुश), कलयति = ध्यान करता है, (वह) सयोषान्= अपनी अपनी देवियों के सहित, देवान्= देवताओं को, भूभुजः= राजाओं को, (और) अन्यसैन्यान्= शत्रुओं की सेना को, स्तम्भयति= स्तम्भित कर देता है।

व्याख्याः– "तेन वित्तस्चुंचुप्चणपौ" इस पाणिनीय व्याकरण के सूत्र (5.2.26) से विख्यात अर्थ में चणप् प्रत्यय लगकर "त्रिलोकी स्तम्भारम्भणचणं" यह पद बना है, इसलिये "स्वर्ग, पृथिवी और पाताल इन तीनों लोकों के निवासियों के स्तम्भन का आरम्भ करने में विख्यात" यह अर्थ लिया गया है। तात्पर्य यह है कि जो साधक विजय अंकुश गत शक्ति का अपने अन्तःकरण में ध्यान करता है वह तीनों लोकों में चंचलता पूर्वक भ्रमण करने के स्वभाववाले अपने मन को स्थिर करने में समर्थ हो जाता है। ऐसे साधक को देवियों सहित देवतागण, राजालोग और शत्रु सेना भी स्तब्ध, वशीभूत अथवा परास्त नहीं कर सकते क्योंकि जो उसके बाधक बनते हैं उन्हें वह देवी की कृपा से स्तब्ध करने में समर्थ होता है। जैसे कि कहा है–

"विद्यासु कुरुते वादं यो विद्वान्नामजापिना।
तस्य वाक्स्तम्भनं सद्यः करोति नकुलीश्वरी।।"

अर्थात् जो कोई भी विद्वान् आपके नाम को जपनेवाले के साथ किसी भी विद्या के विषय में वाद विवाद करें तो स्वयं भगवती की एक शक्ति नकुलेश्वरी तत्काल उस विद्वान् की वाणी को स्तम्भित कर देगी और उपासक की रक्षा करेगी।।49।।

यह 50वा श्लोक अतिधृती छन्द के प्रजाति शार्दूलविक्रीडित छन्द में है, जिसका लक्षण है–"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।" 12,7 का विभाग कर पाठ करना होता है। चारों आयुधों का अलग–अलग ध्यान और फल बता कर अब चारों आयुधों का एक साथ ध्यान करने का विधान कर फल बताते हैं–

चापध्यानवशाद्भवोद्भवमहामोहं महाजृम्भणं
प्रख्यातं प्रसवेषु चिन्तनवशात्तत्च्छरव्यं सुधीः।

पाशध्यानवशात्समस्तजगतां मृत्योर्वशित्वं महा–
दुर्गस्तम्भमहांकुशस्य मननान्मायाममेयां तरेत्।।50।।

भावार्थः– सद्‌बुद्धिवाला विद्वान् साधक आपके प्रत्यंचा सहित धनुष के ध्यान से अत्यन्त विस्तृत संसार में उत्पन्न महा मोह को तर जाता है, आपके तरकस सहित बाणों का ध्यान करने से पुनर्जन्म में कारणीभूत प्रसिद्ध अज्ञानरूपी आवरण को नष्ट कर लेता है, आपके पाश का ध्यान करने से समस्त जगत में वर्णित अनन्त प्रकार की मृत्यु को जीत लेता है और महान किलों को स्तम्भित करनेवाले आपके अंकुश का ध्यान करने से अप्रमेय माया को तर जाता है।

अन्वितार्थः– सुधीः= सद्‌बुद्धिवाला विद्वान् साधक, चापध्यान वशात्= आपके प्रत्यंचा सहित धनुष के ध्यान करने से, महाजृम्भणं = अत्यन्त विस्तृत, भवोद्भवमहामोहं= संसार में उत्पन्न महा मोह को, तरेत्= तर जाता है, तत्तच्छरव्यं= आपके तरकस सहित तत्तद् बाणों का, चिन्तनवशात्= ध्यान करने से, प्रसवेषु= पुनर्जन्म के कारणीभूत, प्रख्यातं= प्रसिद्ध अज्ञानरूपी आवरण को, (तरेत्= तर जाता है यानि नष्ट कर लेता है), पाशध्यानवशात्= आपके पाश का ध्यान करने से, समस्तजगतां= समस्त जगत में वर्णित, मृत्योः= सब प्रकार की मृत्युओं को, वशित्वं= अपने वश में कर लेता है अर्थात् जीत लेता है, महादुर्गस्तम्भमहांकुशस्य= महान किलों को स्तम्भित करनेवाले आपके अंकुश का, मननात् = ध्यान करने से, अमेयां= (मातुमशक्यां) अप्रमेय, मायां= माया को, (तरेत्=तर जाता है)।

व्याख्याः– संसार में आसक्त पुरुष को सांसारिक पदार्थों में मोह हो जाता है और वह मोह जंगल की आग के समान फैलता है और बढते ही रहता है, उसे नष्ट करने का एक मात्र उपाय है माँ भगवती के प्रत्यंचा चढाये हुये धनुष का ध्यान। मोह नष्ट होने पर भी व्यवहार का कारणीभूत तत्तद्विषयक अज्ञान

(जिसे वेदान्त में तूला अविद्या कहते हैं) नष्ट नहीं होता, उसे नष्ट करने का एक मात्र उपाय है माँ भगवती के हस्तगत बाणों का ध्यान। तूला अविद्या के नष्ट होने पर भी जीवभाव का कारणीभूत अज्ञान (जिसे वेदान्त में मूला अविद्या कहते हैं) का नाश न होने से मृत्यु का भय बना रहता है, उस मृत्यु के भय को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है माँ भगवती के हस्तगत पाश का ध्यान। शेष बचता है जीवभाव यानि बन्धन का कारणीभूत अज्ञान यानि माया का नाश, जो माँ भगवती के हस्तगत अंकुश का ध्यान से नष्ट होता है। इसलिये गीता में कहा है–

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मयायमेतां तरन्ति ते।।" (गीता 7.14)

अर्थात् इस दैवी व गुणमयी मेरी माया को तरना कठिन है किन्तु जो लोग मेरी शरण यानि आयुध आदि सहित मेरा ध्यान करते हैं वे इस माया को तर जाते हैं। माँ भगवती के चारों आयुधों के विषय में चतुःशती में ऐसा कहा है–

"इच्छाशक्तिमयं पाशमंकुशं ज्ञानरूपिणम्।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधदुज्ज्वलम्।।"

अर्थात् क्रियाशक्ति धनुषबाण (कर्म योग) है, इच्छाशक्ति पाश (भक्तियोग / उपासना) है और ज्ञान शक्ति अंकुश (ज्ञानयोग) है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार धनुष, बाण, पाश और अंकुश आदि अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित समर्थ व्यक्ति अपने लक्ष्य को ठीक से भेदन कर लेता है यानि सामने आये हुये शत्रु को काबू कर लेता है अथवा नाश कर देता है उसी प्रकार माँ भगवती के शक्ति व सामर्थ्य युक्त आयुधों का ध्यान चिन्तन करने से यानि कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग को सम्यक् प्रकार से अपनाने से स्वदेहान्तर्गत रहनेवाले काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य, लोभ आदि परमपुरुषार्थ के शत्रुओं जिनके कारण बारम्बार जन्म मरण का भय सदा बना रहता है उन सब का नाश होता है और उनका नाश होने से माया कल्पित संसार को विचारशील विवेकी पार

कर जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है।।50।।

यह 51वां श्लोक प्रकृति छन्द के प्रजाति स्रग्धरा छन्द में है, जिसका लक्षण है– "म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्"। अर्थात् क्रमशः म,र,भ,न,य,य,य गणों से श्लोक की रचना की जाती है और 7,7,7 का विभाग कर पाठ करना है। 25 वें श्लोक में "त्वद्रूपस्य गुरोः" और 27 वें श्लोक में "त्वां गुरुमभ्युपेत्य" ऐसा कहकर परदेवता के साथ तादात्म्यता प्राप्त गुरु से दीक्षा प्राप्ति पूर्वक मुक्ति कहा गया है। लेकिन यह तादात्म्य कैसे संभव है? इस प्रश्न क जवाब में "देवो भूत्वा देवान् यजेत्" इस श्रुति के आधार पर तादात्म्य प्राप्ति क साधन न्यासों का वर्णन कर रहे हैं जो उपासना केलिये अत्यन्त आवश्यक हैं–

न्यासं कृत्वा गणेशग्रहभगणमहायोगिनीराशिपीठैः
षड्भिः श्रीमातृकार्णैः सहितबहुकलैरष्टवाग्देवताभिः।
सश्रीकण्ठादियुग्मैर्निजविमलतनौ केशवाद्यैश्च तत्त्वैः
षट्त्रिंशद्भिश्च तत्त्वैर्भगवति भवतीं यः स्मरेत्स त्वमेव।।51।।

पाठभेदः– पंचाशन्मातृकार्णैः। धराद्यै।

भावार्थः– हे भगवती! गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, मेष आदि राशि और पीठ – इन छः न्यास के साथ मातृकावर्ण सहित कला, वशिन्यादि आठ वाग्देवता, श्रीकण्ठादि युगल, केशवादि तत्त्व और छत्तीस तत्त्वों से न्यास करके जो आपका स्मरण करता है वह साक्षात् आप ही हैं।

अन्वितार्थः– हे भगवति!= हे सर्वपूज्य अथवा षडैश्वर्यसंपन्ना देवी!, यः= जो गुरु व साधक, निजविमलतनौ= अपने विशुद्ध शरीर में, गणेशग्रहभगणमहायोगिनीराशिपीठैः= गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनी राशि और पीठ (नामक न्यासों से), सहितबहुकलैः= बहुत कलाओं से युक्त, षड्भिः श्रीमातृकार्णैः = छह मातृका वर्णों से (अथवा पंचाशन्मातृकार्णैः= पचास मातृका वर्णों से) सश्री कण्ठादि युग्मैः= श्रीकण्ठ और पूर्णोदरी सहित समस्त युग्म न्यासों से,

केशवाद्यैश्च = केशव और कीर्ति आदि युग्म न्यासों के सहित, अष्टवाग्देवताभिः = वाग्देवता अष्टक न्यास से, तत्त्वैः = चार तत्त्वों से, षट्त्रिंशद्भिश्च तत्त्वैः = छत्तीस तत्त्वों से (अथवा षट्त्रिंशद्भिश्च धराद्यैः= पृथिवी आदि छत्तीस तत्त्वों से) न्यासं= न्यास को, कृत्वा = करके, भवतीं= आपको, यः = जो, स्मरेत्= स्मरण करे, सः= वह, त्वमेव= आप ही हो जाता है।

व्याख्याः– भगवती शब्द के बारे में शक्ति रहस्य में यह कहा गया है कि–

''पूज्यते यः सुरैः सर्वैः तांश्चैव भजते यतः।
सेवायां भजतिर्धातुर्भगवत्येव सा स्मृता।।''

अर्थात् समस्त देवताओं से जो पूजित है, जिस कारण वे सब पूजित हुये हैं और भजन शब्द का मूल 'भज' धातु सेवा अर्थ में होने से वह भगवती में ही स्मृत है यानि स्वीकृत है। अथवा छह ऐश्वर्य से युक्त होने से भगवती कहा जाता है, वे छह ऐश्वर्य है–

''ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानविज्ञानयोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।''

(विष्णु पराण 6.5.74, यह श्लोक कालिका पुराण में भी है) अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और विज्ञान इन छहों पर संपूर्ण रूप से अधिकार होने को भग कहते हैं, ऐसे भग वाली को भगवती कहते हैं। अथवा

''उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां गतिमागतिम्।
अविद्याविद्ययोस्तत्त्वं वेत्तीति भगवत्यसौ।।''

(विष्णु पुराण 6.5.78 और यह श्लोक देवीभागवत में भी है) अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय, भूतों का गमन और आगमन तथा अविद्या और विद्या के रहस्य को जाननेवाली होने से भगवती नाम से कहा जाता है। ऐसी भगवती के न्यास के विना श्रीविद्योपासना अधूरी है। न्यास का अर्थ है एक वस्तु को दूसरी वस्तु में अभेद कर स्थापना करना। लेकिन इस स्थल पर

विधान किया गया न्यास तो दर्शाये अनुक्रम से देवता आदि के दैवी तत्त्वों को अपने शरीर के विभिन्न अंगप्रत्यंगों को हाथ की अंगुलियों के विशेष आकार अर्थात् आगम शास्त्र में वर्णित मुद्रा से स्पर्श करके तत्तद् देवता को अपने शरीर में निविष्ट होने की भावना कर स्थापित करना है। साथ ही यह भावना भी करनी है कि अंगप्रत्यंग में सूक्ष्म रूप से विद्यमान मल दूर हुआ तथा मैं शारीरिक और मानसिक रूप से अत्यन्त विशुद्ध हो गया हूँ एवं अब मैं शुद्ध सत्त्व प्रधान दैवी शरीर युक्त हूँ। उपासना काल पर्यन्त इसी भावना से युक्त रहकर संपूर्ण पूजा, अर्चना, ध्यान, हवन आदि करना चाहिये। "देवो भूत्वा देवान् यजेत्"– यह श्रौत सिद्धान्त है। इसलिये कहा है कि वह गुरु व साधक साक्षात् आप ही हैं अर्थात् देवी का ही रूप है। यह अतिमानुषिक स्थिति का चमत्कार न्यास प्रयोग द्वारा होता है।न्यासों का विस्तृत वर्णन कृपया परिशिष्ट में देखें।।51।।

यह 52वां श्लोक अतिश्क्वरि छन्द के प्रजाति मालिनी छन्द में हैं, जिसका लक्षण है–"ननमयय युतेयं मालिनी भोगिलोकैः।" 8,7 का विभाग कर पाठ करना होता है। उक्त न्यास का प्रयोग करने पर जिसके शरीर में शक्ति तत्त्व अभिव्यक्त हो गया हो उसकी महिमा दर्शाते हैं–

सुरपतिपुरलक्ष्मीजृम्भणातीतलक्ष्मीः
प्रभवति निजगेहे यस्य दैवं त्वमार्ये।
तव विविधकलानां पात्रभूतस्य तस्य
त्रिभुवनविदिता सा जृम्भते कीर्तिरच्छा।।52।।

पाठभेदः स्फूर्तिरच्छा।

भावार्थः– हे आर्ये! आपके विविध कलाओं का अर्थात् 64 कलाओं को जानकर 64 उपचारों से आपकी उपासना करनेवाले का हृदय है निवास स्थान जिस उपासक का, उस उपासक को आप ही परम दैवत्य हैं अर्थात् आपके साथ वह सायुज्यता और

सारूप्यता को प्राप्त है। उसके घर/आश्रम में समस्त देवताओं के राजा इन्द्र की नगरी स्वर्ग के ऐश्वर्य के विस्तार को भी अतिक्रमण करनेवाली अर्थात् लज्जित करनेवाली लक्ष्मी स्वेच्छा से रहती है और तीनों लोकों में विख्यात देवी के प्रसाद से प्राप्त वह निर्मल कीर्ति/स्फूर्ति रूपी लक्ष्मी सदा प्रकाशित होती है और विस्तार को प्राप्त होती रहती है।

अन्वितार्थः– हे आर्ये!= हे श्रेष्ठमाते! विविधबहुकलानां= आपकी विविध कलाओं का (अर्थात् 64 कलाओं को जानकर 64 उपचारों से आपकी उपासना करनेवाला), पात्रभूतस्य= निवास स्थान है, यस्य= जिस उपासक का हृदय, उस उपासक को, त्वं= आप ही, दैवं= परम दैवत्य हैं, अर्थात् आपके साथ सायुज्यता और सारूप्यता को प्राप्त है, तस्य= उसके, निजगेहे= घर/आश्रम में, सुरपतिपुरलक्ष्मीजृभणातीतलक्ष्मीः= समस्त देवताओं के राजा इन्द्र की नगरी स्वर्ग के ऐश्वर्य के विस्तार को भी अतिक्रमण करनेवाली अर्थात् लज्जित करनेवाली लक्ष्मी, प्रसरति= स्वेच्छा से रहती है, त्रिभुवनविदिता= तीनों लोकों में विख्यात देवी के प्रसाद से प्राप्त, सा= वह, अच्छा=निर्मल, स्फूर्ति= कीर्ति/स्फूर्ति रूपी लक्ष्मी सदा, जृम्भते= प्रकाशित होती है, च= और, प्रसरति= विस्तार को प्राप्त होती रहती है।

व्याख्याः– 'हे आर्ये!' इस संबोधन में प्रयुक्त आर्य शब्द के बारे में अमरकोश में कहा है–

''महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः'' (2.7.3)

अतः श्रेष्ठ माता अर्थ लिया गया है। जो उपासक पूज्य–पूजक भेद के अध्यारोप को त्यागकर न्यासों के माध्यम से अभेद भाव ग्रहण करता है और आपके स्वरूप में ही लीन हो गया हो उसके घर/आश्रममें लोकोत्तर दैवी संपत्ति का तेजःपुंज के सामने स्वर्ग की समृद्धि के तेज भी निस्तेज हो जाता है अर्थात् स्वरूप के परमानन्दानुभव के सामने संसार का संपूर्ण ऐश्वर्य भी तुच्छ भासित होता है क्योंकि उसको कुछ भी अप्राप्त

नहीं है। इसलिये तत्त्वविद् महात्मा कभी भी सांसारिक समृद्धि को नहीं चाहता है क्योंकि अभीष्ट वस्तुओं के जाल में अखण्डानन्दाकार वृत्ति के लिये अवकाश ही नही रहता है।।52।।

यह 53वां श्लोक प्रकृति छन्द के प्रजाति स्रग्धरा छन्द में हैं, जिसका लक्षण है – ''म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयं।'' 7,7,7 का विभाग कर पाठ करना होता है। अब अभेद चिन्तन का फल बता रहे हैं–

मातस्त्वं भूर्भुवःस्वर्महरसि नृतपःसत्यलोकैश्च सूर्ये–
न्द्वारङ्गाचार्यशुक्रार्किभिरपि निगमब्रह्मभिः प्रोतशक्तिः।
प्राणायामादियत्नैः कलयसि सकलं मानसं ध्यानयोगं
येषां तेषां सपर्या भवति सुरकृता ब्रह्म ते जानते च।।53।।

भावार्थः– हे माते! भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक – ये सात लोक; सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि – ये सात ग्रह और वेद मात्र गम्य ब्रह्म, इन सब रूपों में ओत प्रोत शक्ति आप ही हैं। तथा प्राणायामादि प्रयत्नों से प्राप्त सकल मानस ध्यान योग का भी आप ही संपादन करती है। एवं जो लोग आपकी ब्रह्म रूपता को जानते हैं उनकी पूजा देवों के द्वारा भी की जाती है।

अन्वितार्थः– हे मातः!= हे माते!, भूर्भुवःस्वर्महर्नृतपःसत्य लोकैः= भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक – ये सात लोक; सूर्येन्द्वारङ्गाचार्यशुक्रार्किभिः= सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि – ये सात ग्रह, अपि = भी, च= और, निगमब्रह्मभिः= वेद मात्र गम्य ब्रह्म भी, प्रोतशक्तिः= इन सब रूपों में ओत प्रोत शक्ति, असि= आप ही हैं। प्राणायामादि यत्नैः = प्राणायामादि प्रयत्नों से प्राप्त, सकलं= सकल, मानसं= मानस, ध्यानयोगं= ध्यान योग का भी, कलयसि= आप ही संपादन करती हैं। एवं येषां= जो लोग, ते=आपकी, ब्रह्म = ब्रह्मरूपता को, जानते = जानते हैं, तेषां= उनकी, सपर्या= पूजा, सुरकृता=

देवों के द्वारा भी की, भवति= जाती है।

व्याख्याः– कर्म फल रूपी सप्त लोक, फल भेद के निमित्त सप्त ग्रह, मोक्ष के साधन अष्टांग योग और वेदोक्त प्रणव – ये सब आपके ही रूप हैं। इसलिये पूर्व में भी भगवती को समस्त त्रिक रूप सिद्ध किया गया है और

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छान्दोग्य उपनिषद् 3.14.1)

इस उपनिषद् की उक्ति के अनुसार यह बात स्पष्ट है कि सर्व व्यापक ब्रह्म आप ही हैं। इसलिये सर्व व्यापक पूर्ण ब्रह्म रूप से आपको जाननेवालों की पूजा देवता लोग भी करते हैं, इसलिये उनके मन में जो भी इच्छा उठती हैं उसे उसी क्षण देवता लोग पूर्ण करते हैं।।53।।

यह 54वां श्लोक अत्यष्टि छन्द के प्रजाति शिखरिणी छन्द में है, जिसका लक्षण है–"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी" 6,11 का विभाग कर पाठ करना है। स्तुति कर्ता अपना गर्व त्याग कर अपनी न्यूनता दर्शाता है–

क्व मे बुद्धिर्वाचा परमविदुषो मन्दसरणिः
क्व ते मातर्ब्रह्मप्रमुखविदुषामाप्तवचसाम्।
अभून्मे विस्फूर्तिः परतरमहिम्नस्तव नुतिः
प्रसिद्धं क्षन्तव्यं बहुलतरचापल्यमिह मे।।54।।

भावार्थः– हे माते! आपके परमतत्त्व को न जाननेवाली वाणी सहित मन्द शैलीवाली मेरी बुद्धि कहाँ? आपके स्वरूप को जाननेवाले श्रीब्रह्माजी प्रमुख है जिन देवताओं के, ऐसे देवताओं के प्रामाणिक वचन का विषयभूत आपका स्वरूप कहाँ? तथापि आपकी श्रेष्ठतर महिमा की स्तुति करने की स्फूर्ति मुझमें हुयी है। इस स्तुति में मुझ मनुष्य की स्वाभाविक बहुलतर चपलता जो प्रकट हुयी है वह क्षमा के योग्य हैं।

अन्वितार्थः– हे मातः!= हे माते!, परं= आपके निरतिशय स्वरूप को, अविदुषः= न जाननेवाली, मे= मेरी, वाचा= वाणी

सहित, मन्दसरणिः = मन्द प्रवृत्तिवाली, बुद्धिः = बुद्धि, क्व = कहाँ, ब्रह्माप्रमुखविबुधस्य = आपके स्वरूप को जाननेवाले श्रीब्रह्माजी प्रमुख है जिन देवताओं के, ऐसे देवताओं के, आप्तवचसाम्= प्रामाणिक वचन का विषयभूत, ते= आपका स्वरूप, क्व = कहाँ, (तथापि) तव= आपकी, परतरमहिम्नः= श्रेष्ठतर महिमा की, नुतिः = स्तुति, विस्फूर्तिः= करने की स्फूर्ति, मे= मुझमें, अभूत्= हुयी है। इह= इस स्तुति में, मे= मेरी, बहुलतरचापल्यं= स्वाभाविक बहुलतर चपलता जो, इति प्रसिद्धं= प्रकट हुयी है, क्षन्तव्यं= वह क्षमा करने योग्य हैं।

व्याख्याः– यद्यपि सृणि शब्द का अर्थ मार्ग होता है। जैसे कि अमर कोश में कहा है–

"अयनं वर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः सरणिः।"(2.1.15)

तथापि प्रकरण के अनुसार यहाँ विषय रूपी मार्ग में प्रवृत्ति अर्थ लिया गया है। यद्यपि ब्रह्माजी आदि देवता भी आपकी महिमा का वर्णन करने में शक्ति हीन अर्थात् असमर्थ हैं, जैसे कि प्रथम श्लोक में ही कहा गया है, तथापि आपने उनके द्वारा ही समस्त वेदादि शास्त्रों को प्रकट किया है। उसी प्रकार आपके स्वरूप को समझने में अत्यन्त असमर्थ व अयोग्य मुझ जैसे तुच्छ मनुष्य के द्वारा आज आपने महती कृपा करके अपनी अवर्णनीय माहात्म्य को प्रकट किया है। नुति शब्द का अर्थ स्तुति होता है, जैसे कि अमरकोश में कहा है–"स्तवस्स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः।" (1.6.11)।

लेकिन इसमें मुझ अज्ञानी ने अपनी प्रागल्भ्य व चपलता को प्रसिद्ध अर्थात् प्रकट किया है जो एक दुःसाहस है, वह अबोध बालक द्वारा कृत अपराध को जैसे माता क्रोध किये विना क्षमा करती है उसी प्रकार आप जगज्जननी जगन्माता उक्त मेरे अपराध को क्षमा करें। यही इस श्लोक का तात्पर्य है। क्योंकि इसी प्रकार का श्लोक शिवमहिम्नः स्तोत्र में भी है–

"महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी,
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।" (1)।

और जगद्गुरु श्रीआद्यशंकराचार्यजी ने भी कहा है–

''कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति''

(देव्यपराधक्षमायाचनास्तोत्रं 1)।।54।।

यह 55 और 56वां श्लोक अत्यष्टि छन्द के प्रजाति पृथ्वी छन्द में है, जिसका लक्षण है–''जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।'' 8,9 का विभाग कर पाठ करना है। इस श्लोक में स्तुति कर्ता माँ भगवती से कुछ मांग रहा है–

प्रसीद परदेवते मम हृदि प्रभूतं भयं
विदारय दरिद्रतां दलय देहि सर्वज्ञताम्।
निधेहि करुणानिधे चरणपद्मयुग्मं स्वकं
निवारय जरामृती त्रिपुरसुन्दरि श्रीशिवे।।55।।

भावार्थः– हे परदेवते! आप मुझ पर प्रसन्न हों और मेरे हृदय में स्थित महान भय को नष्ट करें, हे करुणानिधे! मेरी दरिद्रता को नाष्ट करें, हे त्रिपुरसुन्दरी! मुझे सर्वज्ञता प्रदान करें, हे श्रीशिवे! अपने चरण कमल युगल को मेरे हृदय/मस्तक पर स्थापित कर जन्म मरण के चक्र को नष्ट करें।

अन्वितार्थः– हे परदेवते!= हे निरतिशय प्रकाशमया माँ!, प्रसीद= आप मुझ पर प्रसन्न होवे, मम= मेरे, हृदि= हृदय में स्थित, प्रभूतं= महान, भयं= भय को, विदारय= नष्ट करें, हे करुणानिधे!= हे दयासागर माँ!, दरिद्रतां= दरिद्रता को, दलय= नाष्ट करें, हे त्रिपुरसुन्दरी!= हे त्रिपुरसुन्दरी!, सर्वज्ञतां=सर्वज्ञता को, देहि= प्रदान करें, हे श्रीशिवे!= हे ऐश्वर्यमयी कल्याणरूपिणी माते!, स्वयं= आप स्वयं, चरणपद्मयुगं= अपने चरण कमल युगल को, विधेहि=मेरे हृदय/मस्तक पर स्थापित करें, ताकि विदारित जरामृति=सदा केलिये जन्म मरण का चक्र नष्ट हो जाये।

व्याख्याः– यह एक भक्त साधक की सहज स्वाभाविक कामना जो हृदय में है उसे व्यक्त किया है, लेकिन वास्तव में जो

उपासक निष्काम भाव से उपासना करता है उसकी दृष्टि में यह नहीं हो सकता है। क्योंकि बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है कि – "यो वा एतदक्षरमविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोअथ य एतदक्षरं विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः"(2.8.10) अर्थात् जो व्यक्ति आत्मा को अनुभव न करके मरता है वह कृपण है और जो व्यक्ति आत्मा को अनुभव कर मरता है वह ब्रह्म ही है। इसलिये आत्मा को छोडकर इस संसार में निर्भय, धन आदि ऐश्वर्य से युक्त, सकल शास्त्रों के ज्ञानवान और जन्म–मृत्यु रहित होना भ्रम मात्र ही है। तात्पर्य यह है कि सांसारिक सुख साधनों को मांगना वास्तव में भय, दरिद्रता, असर्वज्ञता और बन्धन को ही मांगना है, जो मनुष्य का लक्ष्य ही नहीं है। इसलिये अल्पज्ञ का यह मानना

"दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यं।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्।।"

अर्थात् दरिद्रता और मरण इन दोनों में से मुझे मरण ही अच्छा लगता है दरिद्रता नहीं, क्योंकि मरण थोडा कष्टदायक है जबकि दरिद्रता अनन्त दुःखदायक है, उचित नहीं है। इसलिये यह माँ की शरणागति व योगक्षेम प्रदान करने के सामर्थ्य तथा करुणा और दया स्वभाव को न जाननेवाले एक अल्पज्ञ अबोध बालक का निवेदन ही है, मुमुक्षु का नहीं।।55।।

अब महिम्नःस्तोत्र पाठ करने के फल का वर्णन करते हैं-

इति त्रिपुरसुन्दरीस्तुतिमिमां पठेद्यः सुधीः
स सर्वदुरिताटवीपटलचण्डदावानलः।
भवेन्मनसि वांच्छितं प्रतितसिद्धिवृद्धिर्भवे–
दनेकविधसंपदां पदमनन्यतुल्यो भवेत्।।56।।

भावार्थः– इस प्रकार जो बुद्धिमान् भक्त त्रिपुरसुन्दरी की इस स्तुति का पाठ करता है वह जंगल के पटल को भस्म करने वाले प्रचंड दावानल के समान तेजस्वी होकर अपने संपूर्ण पाप रूपी पटल को नष्ट कर लेता है, वह अपने मनोवांछित फल को पूर्ण कर लेने में समर्थ हो जाता है, प्रतित सिद्धियों की वृद्धि

होगी और अनेक प्रकार की संपत्ति व पद को प्राप्त करता है तथा अतुल्य होता है अर्थात् उसके जैसा और कोई नहीं होता है।

अन्वितार्थः— इति=इस प्रकार, यः=जो, सुधीः=शुद्ध बुद्धि वाला भक्त, इमां=इस, त्रिपुरसुन्दरीस्तुतिं=त्रिपुरसुन्दरी की स्तुति का, पठेत्=पाठ करता है, सः=वह, सर्वदुरिताटवीपटलचण्डदावा—नलः= जंगल के पटल को भस्म करनेवाले प्रचंड दावानल के समान तेजस्वी होकर अपने संपूर्ण पापरूपी पटल को नष्ट कर लेता है, मनसि= वह अपने मन में, वांछितं= इच्छित फल को पूर्ण कर लेने में समर्थ, भवेत्=हो जाता है, प्रतितसिद्धिवृद्धिः=प्रतित सिद्धियों की वृद्धि होगी और, अनेकविधसंपदां= अनेक प्रकार की संपत्ति व, पदं=पद को, भवेत्=प्राप्त करता है, तथा प्राप्त समस्त फल अनन्यतुल्यः=अनन्य तुल्य, भवेत्= होता है अर्थात् उसके जैसा और कोई नहीं होता है।

व्याख्याः— अमरकोश में दुरित, दावानल, वांछा और पद शब्दों के बारे में क्रमशः इस प्रकार कहा है—

"पापं.....दुरित दुष्कृतं" (1.4.23), "दवदावै वनारण्यवह्नी" (3.3.206), वांछा लिप्सा मनोरथः कामोऽभिलाषः " (1.7.27—28) और "पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्मांघ्रिवस्तुषु" (3.3.93)।

ऊपर वर्णित समस्त फल इस स्तोत्र का नित्य पाठ करनेवाले सकाम भक्त को मिलता है— इसका तात्पर्य यह है कि निष्काम भक्त माँ भगवती की विधि विधान से सर्वोपचार सहित पूजा करके, इस स्तोत्र का पाठ प्रसन्नचित्त होकर अनन्यभाव से करता है वह अवश्य ही माँ भगवती के साथ अपनी ऐक्यता का अनुभव कर मुक्त हो जाता है।।56।।

यह 57वां श्लोक अत्यष्टि छन्द के प्रजाति मन्दाक्रान्ता छन्द में है, जिसका लक्षण है—"मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मं।" 4,6,7 का विभाग कर पाठ करना है। माताजी की कृपा प्राप्त भक्त के प्रभाव का वर्णन करते हैं—

पृथ्वीपालप्रकटमुकुटस्रग्रजोराजितांघ्रि
विद्वत्पुंजानतिनुतिसमाराधितो बाधितारिः।
विद्याः सर्वाः कलयति हृदा व्याकरोति प्रवाचा
लोकाश्चर्यैर्नवनवपदैरिन्दुबिम्बप्रकाशैः।।57।।

भावार्थः—राजाओं के मस्तक पर शोभित मुकुट में सज्जित माला के पुष्पों के पराग से पूजित होने के कारण उन परागों से शोभायमान है चरण कमल जिनके, विद्वानों के समूह द्वारा कृत नमन, स्तुति आदि से सम्यग् आराधित हैं जो, बाधित हैं समस्त शत्रु जिनके और सभी विद्यायें हृदय में स्फुरित होती हैं जिनके— ऐसा होकर आपका उपासक चन्द्र बिम्ब प्रकाश के समान नये नये पदों की संरचना से लोगों को आश्चर्य एवं चकित करने में समर्थ, चमत्कारिक एवं अलंकार युक्त वाक्यों से वाणी का प्रयोग करता है।

अन्वितार्थः—पृथ्वीपालप्रकटमुकुटस्रग्रजोराजितांघ्रि= राजाओं के मस्तक पर शोभित मुकुट में सज्जित मालाओं के पुष्पों के पराग से पूजित होने के कारण उन परागों से शोभायमान है चरण कमल जिनके, विद्वत्पूजास्तुतिशतसमाराधितः= विद्वानों के समूह द्वारा कृत नमन, स्तुति आदि से सम्यग् आराधित हैं जो, बाधितारिः = बाधित हैं समस्त शत्रु जिनके और, सर्वः=सभी, विद्याः = विद्यायें, हृदा= हृदय में, कलयति= स्फुरित होती हैं जिनके, (ऐसा होकर आपका उपासक), इन्दुबिम्बप्रकाशैः = चन्द्र बिम्ब प्रकाश के समान, नवनवपदैः= नये नये पदों की संरचना से, तथा लोकाश्चर्यैः= लोगों को आश्चर्य एवं चकित करने में समर्थ, प्रवाचा= चमत्कारिक एवं अलंकार युक्त वाक्यों से, व्याकरोति= वाणी का प्रयोग करता है।

व्याख्याः— तात्पर्य यह है कि आपकी उपासना का प्रभाव ऐसा है जो बलशाली राजा, महाराजा और सम्राट समूह और बुद्धिशाली वेद शास्त्रों के ज्ञाता भी उपासक का सम्मान करते हैं

तथा उसके शत्रुओं का स्वतः ही नाश हो जाता है। उसका अन्तःकरण इतना शुद्ध हो जाता है कि संपूर्ण वेद शास्त्र उसके ह्रदय में स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं जिससे वह निःसंदेह मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। उपासक को प्राप्त वाक्सिद्धि का वर्णन जो किया गया है वह केवल स्तुति मात्र ही है, क्योंकि श्लोक के तीसरे पाद में वर्णित सर्वविद्या प्राप्ति व्यर्थ हो जायेगी। कारण यह है की सिद्धि समाधि में यानि मोक्ष में बाधक होती है। माँ भगवती की कृपा प्राप्त साधक उक्त प्रकार से अत्यन्त प्रभावशाली व मोक्ष पानेवाला होता है।।57।।

यह 58वां श्लोक अतिधृती छन्द के प्रजाति शार्दूलविक्रीडित छन्द में है, जिसका लक्षण है–''सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितेयं।'' 12,7 का विभाग कर पाठ करना है। विद्वान् को प्राप्त होनेवाले फल का वर्णन करते हैं–

संगीतं गिरिजे कवित्वसरणिं चाम्नायवाक्यसृतेः
व्याख्यातं ह्रदि तावकीनचरणद्वन्द्वं च सर्वज्ञताम्।
श्रद्धां कर्मणि कालिकेऽतिविपुलं श्रीजृम्भणं मन्दिरे
सौन्दर्यं वपुषि प्रकाशमतुलं प्राप्नोति विद्वान्कविः।।58।।

पाठभेदः–सरसे विचित्रकविताम्नाय। शाम्भवेति विपुलं।
प्रदेहि जगतामम्बेश्वरि श्रीशिवे।

भावार्थः– हे गिरिजे! हे कालिके! आपका भक्त विद्वान् कवि (क्रान्त दर्शी) हो तो वह संगीत को, कवित्व की शृंखला को, वेद में कथित कर्म–भक्ति–ज्ञान मार्गों के द्वारा प्राप्त करने योग्य रूप से बताये गये आपके चरण कमल युगल को, सर्वज्ञता को, कर्म में श्रद्धा को, ह्रदय मन्दिर में अत्यन्त विशाल ऐश्वर्य के वैभव को और शरीर में अतुलनीय तेज युक्त सौन्दर्य को प्राप्त करता है। पाठान्तर में हे जगतामम्ब! हे ईश्वरि! और हे श्रीशिवे! ये तीन संबोधन हैं।

अन्वितार्थः–हे गिरिजे!=हे शैलपुत्री!, हे कालिके!=हे

जगन्माता काली!, विद्वान्= आपका विद्वान् भक्त, कविः=कवि (क्रान्त दर्शी हो तो वह) संगीतं =संगीत को, कवित्वसरणिं= कवित्व की शृंखला को, च= तथा, आम्नायवाक्यसृतेः= वेद में प्रतिपादित कर्म–भक्ति–ज्ञान मार्गों से प्राप्त करने योग्यरूप से, व्याख्यातं= बताये गये, तावकीनचरणद्वन्द्वं= आपके चरण कमलयुगल को, च= और, सर्वज्ञतां= सर्वज्ञता को, कर्मणि= कर्म में, श्रद्धां= श्रद्धा को, हृदि= हृदय रूपी, मन्दिरे= मन्दिर में, अतिविपुलं= अत्यन्त विशाल, श्रीजृम्भणं=ऐश्वर्य के वैभव को और, वपुषि= शरीर में, अतुलं= अतुलनीय, प्रकाशं= तेज युक्त, सौन्दर्यं= सौन्दर्य को, प्राप्नोति= प्राप्त करता है।

व्याख्याः–मनुष्य को विशेषतः साधक को संगीत जानना अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि साधना में नाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, इसलिये किसी ने कहा है–

"साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः"

अर्थात् साहित्य के ज्ञान और संगीतकला रहित मनुष्य साक्षात् पूंछ और सींग विहीन पशु ही है। किसी और ने कहा हैं

"किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
यस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः।।"

अर्थात् उस कवि का काव्य ही क्या है जो किसी के हृदय को लग कर उसके सिर को आनन्द से न घुमाये यानि न झूमने लगे और उस धनुर्धर का तीर ही क्या है जो लक्ष्य को भेदने पर चक्कर खाकर गिर न जाये। तात्पर्य यह है कि भगवती की कृपा विहीन कवित्व, धनुर्धरत्व आदि सभी विद्यायें और कलायें निष्फल और निष्प्रभावी होते हैं। इस प्रकार आपकी कृपा से ही विद्वान् उपासक अद्भुत अतुलनीय फल को प्राप्त करता है। आम्नाय शब्द का अर्थ वेद है "श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायः" (अमर कोशः 1.6.3)

अथवा छह आम्नायः–ऊर्ध्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय और अनुत्तराम्नाय के महावाक्यों क्रमशः– "ॐ ब्रह्मैवेदं सर्वं, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा

ब्रह्म, ऊँ आत्मैवेदं सर्व'' अथवा तत्तदाम्नाय में वर्णित उपासना जैसे कि ऊर्ध्वाम्नाय में विहित उपासना है श्रीविद्या, अत एव कहा है—

'' ऊर्ध्वत्वात्सर्वधर्माणामूर्ध्वाम्नायः प्रशस्यते।
ऊर्ध्वं नयति अधस्तं चोर्ध्वाम्नाय इति स्मृतः।।''

अर्थात् सकल आश्रम एव वर्ण धर्मो से ऊपर होने से श्रेष्ठ है और नीचे पडे हुये को ऊपर उठातो है इसलिये ऊर्ध्वाम्नाय कहा गया है। मनुष्य केलिये दूसरा नितान्त आवश्यक गुण है श्रद्धा, जिसके विना मनुष्य असुर हो जाता है। इसलिये गीता में कहा है—

''अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।''(17.28)

और''अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।।'' (4.40)।।58।।

यह 59वां श्लोक प्रकृति छन्द के प्रजाति स्रग्धरा छन्द में है, जिसका लक्षण है – ''म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयं।'' 7,7,7 का विभाग कर पाठ करना है। पुनः विद्वान् को प्राप्त होनेवाला विशेष फल को बताते हैं—

भूष्यं वैदुष्यमुद्यद्दिनकरकिरणाकारमाकारतेजः
सुव्यक्तं भक्तिमार्गं निगमनिगदितं दुर्गमं योगमार्गं।
आयुष्यं ब्रह्मपोष्यं हरगिरिविशदां कीर्तिमभ्येत्य भूमौ
देहान्ते ब्रह्मपारं परशिवचरणाकारमभ्येति विद्वान्।।59।।

भावार्थः— आपके विद्वान् भक्त प्रशंसनीय विद्वत्ता को, उदय होते हुये सूर्य की किरणों के तेज के समान तेज को, वेद में बताये भक्ति मार्ग एवं दुर्गम योग मार्ग और श्रेष्ठ ज्ञान मार्ग को, ब्रह्मज्ञान से पोषित आयुष्य को और इस लोक में कैलास पर्वत की शुभ्रता के समान निष्कलंक कीर्ति को प्राप्त कर देहावसान काल में परम शिव के चरण रूपी ब्रह्म जो संसार का पार रूप भी है उसे प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

अन्वितार्थः—विद्वान्= आपके विद्वान् भक्त, भूष्यं= प्रशंसनीय, वैदुष्यं= विद्वत्ता को, उद्यद्दिनकरकिरणाकारमाकारतेजः= उदय

होते हुये सूर्य की किरणों के तेज के समान तेज को, निगमनिगमनं= वेद में बताये भक्ति मार्ग एवं, दुर्गमं= दुर्गम, योगमार्गं= योग मार्ग और सुज्ञानं= श्रेष्ठ ज्ञान मार्ग को, ब्रह्मपोष्यं= ब्रह्मज्ञान से पोषित, आयुष्यं= आयुष्य को (और) भूमौ= इस लोक में, हरिगिरिविशदां= कैलास पर्वत की शुभ्रता के समान निष्कलंक, कीर्तिं= कीर्ति को, अभ्येत्य= प्राप्त कर, देहान्ते= देहावसान काल में, परशिवचरणाकारं= परम शिव के चरण रूपी ब्रह्म जो संसार का पार रूप भी है उसको, अभ्येति= पूर्ण रूपसे प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

व्याख्याः– उक्त तीन श्लोकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आपके भक्त चाहे विद्वान् हो अथवा अविद्वान्, दोनों ही प्रकार के उपासक आपकी कृपा के पात्र हैं। इसलिये माँ भगवती के पूर्ण भक्तिमय तेज से श्रेष्ठ विद्वत्ता प्रकट होती है और उगते हुये सूर्य की किरण जैसे सर्वत्र फैलकर सर्वत्र व्याप्त अन्धकार को नष्ट कर प्रकाश एवं ऊर्जा से स्फूर्ति प्रदान करता है उसी प्रकार उनका तेज सर्वत्र फैलकर दूसरों को भी प्रेरित करता है और अन्य का प्रभाव उन पर नहीं पडता है। ऐसा महान प्रतापी आपका भक्त अवश्य ही वेदोक्त भक्ति मार्ग और अत्यन्त क्लिष्ट योग मार्ग में आरूढ होगा, जिस कारण उसे दुनिया में विशद कीर्ति प्राप्त होगी और अन्त में निश्चय ही वह ब्रह्म पद को प्राप्त करेगा। इस श्लोक में शाक्तागम दृष्टि से "चरणाकार" शब्द रहस्यपूर्ण है, जिसका विवेचन परिशिष्ट में किया गया है।।59।।

यह 60वाँ श्लोक वसन्ततिलका छन्द के प्रजाति उद्घर्षिणी छन्द में है, जिसका लक्षण है – "उक्ता वसन्ततिलका तभजाः जगौ गः ।" 8,6 का विभाग कर पाठ करना है। अब इस स्तोत्र के कर्ता और उसके कृत्य को बताते हैं–

दुर्वाससा महितदिव्यमुनीश्वरेण
विद्याकलायुवतिमन्मथमूर्तिनैतत्।

स्तोत्रं व्यधायि रुचिरं त्रिपुराम्बिकायाः
वेदागमैकपटलीविदितैकमूर्तेः।।60।।

भावार्थः—जगत् में प्रसिद्ध, पूज्य व दिव्य मुनीश्वर, विद्यामूर्ति, कलामूर्ति, और स्त्रियों केलिये काममूर्ति रूप दुर्वासा महर्षि ने वेद और आगम शास्त्र समूह में लक्षित एक मात्र मूर्ति श्रीत्रिपुराम्बा की महिमा को वर्णन करनेवाले इस अत्यन्त सुन्दर स्तोत्र को विरचित किया।

अन्वितार्थः— महितदिव्यमुनीश्वरेण= जगत् में सुप्रसिद्ध पूज्य व दिव्य मुनीश्वर, विद्याकलायुवतिमन्मथमूर्तिना =विद्यामूर्ति, कलामूर्ति, और स्त्रियों केलिये काममूर्ति रूप, दूर्वाससा= दुर्वासा महर्षि ने, वेदागमैकपटलविदितैकमूर्तेः= वेद और आगम शास्त्र समूह में लक्षित एक मात्र मूर्ति, त्रिपुराम्बिकायाः= श्रीत्रिपुराम्बा की, एतत्= महिमा को वर्णन करनेवाले इस, रुचिरं =अत्यन्त सुन्दर, स्तोत्रं= स्तोत्र को, व्यधायि= विरचित किया।

व्याख्याः— दुर्वासा मुनि जगत् में प्रसिद्ध हैं क्योंकि उनके बारे में वेदों व पुराणों में उल्लिखित है। अपने तपोबल से वे पूज्य हुये। वे समस्त विद्याओं में पारंगत होने से विद्यामूर्ति, 64 कलाओं को जाननेवाले होने से कलामूर्ति और कामदेव के समान उनका शरीर रूपवान् होने से काममूर्ति के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मा के चार मुखों से प्रकट हुये निगम (वेद) उपवेद, आदि तथा शंकर के पांच मुखों से प्रकट हुये आगम ग्रन्थों की ऐक्यता को इस स्तोत्र में दर्शाया है। क्योंकि वैदिक सिद्धान्त जीवब्रह्मैक्यभाव और आगम सिद्धान्त शिवशक्त्यैक्यभाव की परस्पर ऐक्यता को यहां दर्शाया है। वैदिक सिद्धान्त में अनिर्वाच्य ब्रह्म लक्ष्य है और आगम सिद्धान्त में अनिर्वाच्य शक्ति लक्ष्य है, लेकिन दोनों पक्षों का तात्पर्य एक ही है। यद्यपि वेद में जिस प्रकार माया से ऊपर ब्रह्म है उसी प्रकार आगम में शक्ति से ऊपर परशिव है तथापि शिवशक्ति का संबंध नित्य है अर्थात् वे तीनों कालों में भी पृथक नहीं होते जब कि माया का ब्रह्म के

साथ काल्पनिक संबंध मात्र है कोई तात्त्विक संबंध नहीं है। फिर भी शिव को साक्षात् ब्रह्म ही है, वस्तुतत्त्व ही है ऐसा मानते हैं। इसलिये शक्ति की उपासना के द्वारा शक्ति के स्वरूप को प्राप्त करने से वह शिव अर्थात् ब्रह्म ही है। तब वह जीवदशा अथवा पशुदशा बदल कर शिवदशा अर्थात् ब्रह्म होता है। कौलोपनिषद्, भावनोपनिषद्, कौलार्णव, शिवसूत्र आदि ग्रन्थों में बताया गया है कि कलियुग में आगम ही प्रधान साधन है, क्योंकि वर्तमान इस कलियुग में राजा–प्रजा का शक्ति प्रधान व्यवहार सर्वत्र प्रचलित होने से व्यवहार और मोक्ष के लिये शक्ति पूजा की अनिवार्यता सर्वानुभव सिद्ध है।।60।।

यह 61वां श्लोक विषमवृत्त छन्द में है, जिसका कोई लक्षण नहीं होता है। अतः पाद क्रम से 10,11,8,12 का विभाग कर पाठ करना है। महर्षि दुर्वासा मुनिजी के देह धारण का कारण बताते हुये शाक्त अद्वैत सिद्धान्त के मूल स्वरूप श्री त्रिपूरसुन्दरी या शक्ति महिम्नः स्तोत्र को समाप्त करते हैं–

सदसदनुग्रहनिग्रहगृहीतमुनिविग्रहो भगवान्।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति देशिकः प्रथमः।61।

भावार्थः– सकल ऐश्वर्य युक्त दुर्वासा मुनि सज्जन और दुर्जन पर अनुग्रह और निग्रह करने के लिये ही मुनि शरीर को धारण किये हुये हैं और सकल उपनिषदों के रहस्य का उपदेश करनेवाले मुनियों में अग्रगण्य मुनि हैं।

अन्वितार्थः– भगवान्= सकल ऐश्वर्य युक्त, दुर्वासा = दुर्वासा मुनि, सदसदनुग्रहनिग्रहगृहीतमुनिविग्रहः = सज्जन और दुर्जन पर अनुग्रह और निग्रह करने के लिये ही मुनि शरीर को धारण किये हुये हैं और सर्वासां= सकल उपनिषदों के, उपनिषदां = रहस्य का, देशिकः= उपदेश करनेवाले, प्रथमः= अग्रगण्य हैं।

व्याख्याः– मुनिजनों का शरीर धारण करना केवल साधुजनों पर अनुग्रह करने और दुर्जनों को निग्रह कर दण्डित करने के लिये है। अनुग्रह के अन्तर्गत वे उपनिषदों के रहस्यपूर्ण

सिद्धान्त का उपदेश देते हैं। ऐसे मुनियों में प्रथम अर्थात् अग्र गण्य मुनि हैं श्रीदुर्वासा महामुनि। उन्होंने उपनिषदों और आगमों में उपदिष्ट अत्यन्त गम्भीर एवं विस्तृत जीवब्रह्मैक्यतारूपी केवलाद्वैतवाद और पशुपत्यैक्यतारूपी शाक्ताद्वैतवाद को जाननेवाले होने से, माँ भगवती के भक्तों पर उपकार करते हुये प्रथम अर्थात् अग्रगण्य गुरुरूप से विश्व में अवतरित होकर इस त्रिपुरा महिम्नः स्तोत्र का उपदेश किया है। चार प्रकार से गुरु परम्परा प्रचलित रही हैं, जो दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ और लोकोत्तर नाम से प्रसिद्ध हैं। मानवौघ गुरुपरम्परा में भी पांच प्रकार का भेद है – ब्रह्मर्षि, देवर्षि, महर्षि, राजर्षि ओर ऋषि। भूलोक में ब्रह्मर्षियों की गुरुपंक्ति में प्रविष्ट होकर दुर्वासाजी ने लोक कल्याण केलिये ही यह महान कार्य किया है। इसलिये इसका लाभ उठाने केलिये सभी मुमुक्षु, जिज्ञासु, उपासक, साधक और सद्गृहस्थ का यह परम कर्तव्य है कि वे सद्गुरु परम्परा में दीक्षित होकर पराशक्ति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की पूजा पाठ आदि करके माँ की कृपा प्राप्त कर मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करें।।61।।

।इति दुर्वासमहामुनिविरचितं श्रीशक्तिमहिम्नःस्तोत्रं संपूर्ण।

यह 62 और 63वां श्लोक अनुष्टुप्छन्द का लक्षण है–"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्। द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।" अर्थात् श्लोक के प्रथम पाद का छटा अक्षर गुरु होगा, प्रथम और तीसरे पाद के सातवां अक्षर दीर्घ होगा, द्वितीय और चतुर्थ पाद के सातवां अक्षर ह्रस्व होगा तथा सभी पादों के पांचवां अक्षर लघु होगा। मनुष्य से स्वभाव वश मन की चंचलता व्यग्रता आदि के कारण स्तोत्र पाठ करने में हुये दोष केलिये क्षमा याचना करना आवश्यक है–

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि।62।

भावार्थः— हे देवी! हे परमेश्वरी! पाठ करते समय उच्चारण करने में जो अक्षर अथवा पद छूट गया हो और मात्रा (ह्रस्व, दीर्घ) और स्वर (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) में हानि हुयी हो, उन सब को क्षमा करें और मुझ पर प्रसन्न होवे।।

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते।।

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।63।।

भावार्थः— अदृश्य किन्तु विद्यमान वह पदार्थ पूर्ण है। दृष्ट सकल यह पदार्थ भी पूर्ण है। क्योंकि पूर्ण से पूर्ण ही उत्पन्न होता है। इसलिये दृष्ट इन पूर्ण पदार्थों में से उपाधि अंश को त्याग कर अपने पूर्ण स्वरूप चैतन्य को लेकर पूर्ण को ही शेष रूप से अनुभव करें। तीन बार शान्ति शब्द का उच्चारण तीन प्रकार के ताप — आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तापों का शमन करने केलिये है।।

परिशिष्टः

प्रथमः पटलः

1. अधिकारी (शिष्यतत्त्व) विषयकविचारः—

नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद् में कहा है —

"सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति.....सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात् स्त्रीशूद्रः स मृतोऽधो गच्छति, तस्मात्सर्वदा नाचष्टे यद्याचष्टे स आचार्यस्तेनैव मृतोऽधो गच्छति।"(1.3)

अर्थात् गायत्री, प्रणव, यजुर्वेद (अन्य वेदों का उपलक्षण है) और श्रीविद्या स्त्री और शूद्र को नहीं देनी चाहिये.......गायत्री, प्रणव, यजुर्वेद (अन्य वेदों का उपलक्षण है)और श्रीविद्या को स्त्री और शूद्र यदि किसी प्रकार जान लेते हैं तो वे मरने के बाद

अधोगति (पेड, पौधा, कीट, पतंग, भूत, प्रेत आदि निकृष्ट योनि) को प्राप्त करते हैं। इसलिये कभी भी स्त्री और शूद्र को न सुनायें और यदि सुनाया तो वह आचार्य भी उसी के कारण (अनधिकारी को उपदेश देने के कारण) मरने के बाद अधोगति को प्राप्त करता है। नारद पंचरात्र में भी कहा है–

''ब्राह्मणक्षत्रियविशो पंचरात्रं विधीयते।
शूद्रादीनां न तच्छ्रोत्रपदवीमपि गच्छति।।''

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही वैष्णव आगम में अधिकार है। शूद्र, स्त्री, वर्णसंकर, म्लेच्छ, आदि के कान में भी नहीं पडना चाहिये। लेकिन शिवार्चनचन्द्रिका में कहा है –

''वैदिको मिश्रितो वापि विप्रादीनां विधीयते।
तान्त्रिको विप्रभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्तितः।।''

अर्थात् वैदिक और स्मार्त मन्त्र, कर्म आदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य केलिये विधान किये गये हैं किन्तु तान्त्रिक मन्त्र, कर्म आदि त्रैवर्णिक के सेवक और शूद्र केलिये भी विधान किये गये हैं। अन्यत्र भी इस प्रकार के वचन हैं, जैसे–

''एतज्ज्ञात्वा महासेन चाण्डालानपि दीक्षयेत्'',
''चतुर्णां ब्राह्मणादीनां दीक्षां कुर्वति मन्त्रवित्''
और ''ब्राह्मक्षत्रियविशः शूद्रा आचार्याः शुद्धबुद्धयः।
गुरु–देव–द्विजार्चा–सुरताः स्युरधिकारिणः।।''

अर्थात् हे महासेन! इसको (ब्रह्मविद्या अथवा श्रीविद्या) को जानकर चाण्डालों को भी दीक्षा दे सकता है। ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को मन्त्रवेत्ता दीक्षित करता है। शुद्ध बुद्धिवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और आचार्य जो गुरु, देवता और द्विज की पूजा, सेवा आदि में मग्न है वे सब अधिकारी हैं। इस आशय को इस शक्ति महिम्नःस्तोत्र के 53वें श्लोक में अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार श्रुति और स्मृति में परस्पर विरोध स्पष्ट दिखाई दे रहा है, इसका यह समाधान है– मनु स्मृति में कहा गया है कि 'श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं साक्षात्धर्मस्यास्ति च लक्षणम्।।" इसके अनुसार सदाचार अर्थात् आगम परम्परा भी धर्म है। इसलिये श्रुति उत्तम व मध्यम अधिकारीयों के विषय में कह रही है और आगम आदि स्मृति मन्द व अतिमन्द अधिकरियों केलिये व्यवस्था दे रही है, ऐसा मानने पर कोई विरोध नहीं रहता है। किन्तु पात्र का वास्तविक व मुख्य लक्षण है 'श्रद्धा', इसलिये किसी कवि ने कहा है–"आगे आगे गुरु चले पीछे पीछे चेला बीच में श्रद्धा नचत धीरे धीरे"। इसके अलावा योगसूत्र में कहे गये यम और नियम भी आवश्यक है, वे हैं–

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः (2.30)

और "शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" (2.32) अर्थात् कायिक, वाचिक और मानसिक हिंसा न करना अहिंसा है। अपने से ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, समाज और देश के हित में बोलना ही सत्य वचन है, न कि जो देखा या जो सुना और जैसा देखा या जैसा सुना उसको विचारे विना उक्त के अहित–हित का विवेक किये विना बोलना सत्य नहीं है अपितु झूठ व पाप है। काया, वाचा, मनसा चोरी न करना अस्तेय है। कठरुद्रोपनिषद् में कहा है– "दर्शनं स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणं।

संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।।
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः।।

अतः आठ प्रकार के मैथुन न करना ब्रह्मचर्य है। आवश्यकता से ज्यादा और भोग विलासिता के लिये संग्रह न करना किन्तु अतिथि, ब्राह्मण, देव पूजा, यज्ञ, समाज व देश सेवा केलिये आवश्यक न्यूनतम संग्रह करना अपरिग्रह है। बाह्य यानि बाहर स्थूल शरीर को जल व मन्त्र से नहलाना, शुद्ध वस्त्र पहनाना, आदि और अन्तः यानि सूक्ष्म शरीर के अवयव मन,बुद्धि व हृदय को शुद्ध रखने का तात्पर्य है संकल्प रहित मन, पवित्र विचार से युक्त बुद्धि और राग द्वेष आदि से रहित हृदयवाला होना शौच है। लोभ लालच त्यागकर पुरुषार्थ, भाग्य और भगवत्कृपा से जो

प्राप्त हो उसी में प्रसन्न रहना संतोष है। व्रत, उपवास आदि कायिक, वाणी का मौन आदि वाचिक और काम, क्रोध आदि रहित मानसिक तप है। नित्य नियमित रूप से एवं निश्चित काल (1 घण्टा, 2 घण्टा आदि) वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, योग वासिष्ठ, आदि शास्त्रों का अध्ययन करना व गुरुमन्त्र का जप करना स्वाध्याय है। कायिक, वाचिक और मानसिक समस्त क्रिया और फल के साथ खुद को शुद्ध निष्काम भावना से ईश्वर को अर्पित करना ईश्वरप्रणिधान है।

2..दीक्षातत्त्वविषयकविचारः–

दीक्षा शब्द दीक्ष् मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु धातु से (भ्वादि आत्मनेपद सेट् 404 से 'गुरोश्च हलः' सूत्र से अ प्रत्यय और स्त्रीलिंग की विवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर) बनता है, अर्थात् दीक्ष् धातु मुण्डन करना, याग करना, उपनयन संस्कार, नियम पालन, व्रत पालन और आदेश यानि उपदेश ग्रहण करना – इन छह क्रियाओं को अभिव्यक्त करने केलिये प्रयोग किया जाता है, अतः दीक्षा शब्द के अनेक अर्थ है। दीक्षा का लक्षण मन्त्रोपनिषद् में ऐसा किया है–

"ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयं।
अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता दीक्षाशब्दार्थवेदिभिः।।"

अर्थात् दीक्षा शब्द के अर्थ के ज्ञाताओं के द्वारा उसे दीक्षा बताया गया है जो शिव से तादात्म्य प्रदान करें और तीनों मलों (आणव, शाक्त और शाम्भव अथवा विक्षेप, मल और आवरण)को नष्ट कर दे। इसी प्रकार का लक्षण महालक्ष्मीतन्त्र और आगम में भी हैं। शैव और शाक्त मत में दीक्षा तीन प्रकार की मानी गयी है। वे हैं–

"त्रिविधा सा भवेद्दीक्षा प्रथमा चाणवी परा।
शाक्तेयी शाम्भवी चेति सद्योमुक्तिप्रदायिनी।।"

अर्थात् दीक्षा तीन प्रकार की है, पहली आणवी, दूसरी शाक्तेयी और तीसरी सद्योमुक्ति देनेवाली शाम्भवी है। किन्तु वर्तमान प्रसंग में मन्त्र का उपदेश ग्रहण कर तत् संबंधित व्रत

का पालन पूर्वक नियमित रूप से जप करने अर्थ में लिया गया है, जिसे आणवीदीक्षा के अन्तर्गत मन्त्रदीक्षा कहते हैं। मन्त्र लेने के बाद उसका सही ढंग से प्रयोग व उपयोग अवश्य करना चाहिये अन्यथा व्यक्ति को दोष लगेगा, जैसे की महालक्षीमतन्त्र में कहा है–

"अविधाय पुरश्चर्या यः कर्म कुरुते मुने।
देवताशापमाप्नोति न च सिद्धिं स विन्दति।।
पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपतर्पणमेव च।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्व पुरश्चरणमुच्यते।।"

अर्थात् हे मुनिश्रेष्ठ! जो पुरश्चरण को न करके केवल कर्म करता है वह सिद्धि यानि मन्त्र का फल प्राप्त नहीं कर सकता है और उसे मन्त्र के देवता का शाप प्राप्त हो जायेगा। इसलिये दीक्षित साधक को नित्य ही त्रिकाल संध्या सहित पूजन, नियमित व निश्चित जप, तर्पण, होम और ब्राह्मण भोजन अवश्य कराना चाहिये, इसी को पुरश्चरण कहते हैं।

मन्त्र दीक्षा लेने में पूर्णाभिषेक के पूर्व स्नानादि दैनिक होम पर्यन्त कृत्य से निवृत्त शिष्य को गुरु पंचगव्य पिलाकर मण्डप के दक्षिण द्वार से यागस्थान में लाकर अग्निकुण्ड के निकट बैठाकर स्वयं अपने (यदि संन्यासी न हो तो) दैनिक होम को करके (यदि संन्यासी हो तो मानसपूजा, जप आदि करके) स्वयं अपना और शिष्य का षडध्व शोधन करें –

"विलोक्य दिव्यदृष्ट्या, ते चैतन्यं हृदम्बुजात्।
गुरुरात्मनि कुर्याद्, तस्मिन्नध्वविशोधनम्।।"

अर्थात् गुरु शिष्य को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर शिष्य की बहती हुयी नाडी ये अंकुशमुद्रा द्वारा तारकाकृति चैतन्य को खींचकर अपनी बहती नाडीयों द्वारा अपने हृदय में स्थापित करके षडध्व शोधन आरम्भ करें।

अध्वशोधन से ही मानव शरीर को शोधन किया जा सकता

है, इसलिये मानव शरीर को षडध्वमय माना गया है, यथा–

"शान्त्यतीतकला मूर्द्धा शान्ति वक्षशिरोरुहा।
निवृत्तिजानुजंघांघ्रि भुवनाध्व शिरोरुहा।।
मन्त्राध्व मांसरुधिरा पदवर्णशिरायुता।
तत्त्वाध्व मज्जामेदोऽस्थिधातुरेतोयुता शिवे।।"

अर्थात् (1) निवृत्ति प्रतिष्ठा आदि पंच कलाओं से उत्पन्न होने से मनुष्य के मूर्द्धा, मुख, वक्षस्थ बाल, जानु, और पैर–ये कलाध्वमय हैं, (2) सिर के केश भुवनाध्वमय है, (3) मांस और खून मन्त्राध्वमय हैं, (4 और 5) स्थूल और सूक्ष्म नाडीयां पादाध्वमय और वर्णाध्वमय हैं, (6) मज्जा, मेदा, हड्डी, वीर्य आदि शेष धातु तत्त्वाध्वमय हैं। इन छह अध्वों में से वर्ण, पद और मन्त्र–ये तीन शब्दाध्वमय हैं और कला, तत्त्व, भुवन–ये तीन अर्थाध्वमय हैं, इस प्रकार वास्तव में दो ही अध्वा हैं। वर्ण माला के अ से क्ष पर्यन्त अक्षर वर्णाध्व है। वर्णसमूह पदाध्व। अक्षरों का विशेष समूह मन्त्राध्व है। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता– ये पांच कलाध्वा हैं। 36 शैव, 32 वैष्णव, 24 सांख्य, 10 प्रकृति, 7 शक्ति (त्रिपुरा)–ये तत्त्व ही तत्त्वाध्वा है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश–ये भुवनाध्वा है। जैसे कि शारदातिलक में कहा है–

"तत्त्वाध्वा बहुधा भिन्नः शिवाद्यागमभेदतः।
ईरितो भुवनाध्वेति भुवनानि मनीषिभिः।।
वर्णाध्वेति चाकारादि क्षकारान्तान् मनीषिभिः।
वर्णसंघः पदाध्वा स्यान्मन्त्राध्वा मन्त्रराशयः।।}

उक्त षडध्वशोधन इस प्रकार करें:–

"क्रमादेतानध्वनः षट् शोधयेत् गुरुसत्तमः।
पदान्धुनाभिहृद्भाले मूर्धस्वपि शिशोः स्मरेत्।।"

क्रम से पैर में कलाध्व का, अन्धु (जांघ) में तत्त्वाध्व का, नाभि में भुवनाध्व का, हृदय में वर्णाध्व का, भाल (ललाट) में पदाध्व का और मूर्धा (सिर) में मन्त्राध्व का शोधन करें। {ध्यान दें:– इस शोधन प्रक्रिया में प्रयुक्त मन्त्रों को गुरुपरम्परा अथवा

शारदातिलक आदि मन्त्रशास्त्रों से ही जानना चाहिये इसलिये यहां नहीं लिखा है}।

28 प्रकार की दीक्षाओं में से सर्वप्रथम क्रमदीक्षा ली जाती है। क्रमदीक्षा भी मुख्यतः 12 प्रकार की है, उनमें से सर्वप्रथम विद्याक्रम 6 प्रकार का है, जैसे कि लिखा है–

"सर्वाम्नायप्रभेदेन षड्धा विद्याक्रमः स्मृतः।
पूर्वाम्नाये चोन्मनी च पूर्णेशी भुवनेश्वरी।।
द्वीपशाम्भवकं दिव्यं लिंगमूले व्यवस्थितम्।
आद्या श्यामा दक्षिणा च दक्षिणाम्नायवर्त्मनि।।
संवर्तशाम्भवं दिव्यं मणिपूरे व्यवस्थितम्।।
पश्चिमे कुब्जिका वज्रकुब्जिकाऽघोरकुब्जिका।
सर्वाधिकारविद्याख्यं शाम्भवं चतुरन्वयम्।।
उपमार्गे महापूर्वा काली लक्ष्मी सरस्वती।
चामुण्डा च महाविद्येश्वराख्यं शाम्भवं हृदि।।
उत्तरे सिद्धि लक्ष्मीश्च महासिद्धि करालिका।
कामकला गुह्यकाली हंसशाम्भवं कण्ठजम्।।
ऊर्ध्वे बाला पंचदशी षोडशी परशाम्भवं।
आज्ञाचक्रे स्थितं दिव्यं श्रीविद्याक्रमसंयुतम्।।"

अर्थात् सभी 6 आम्नायों के भेद से विद्याक्रम भी 6 प्रकार के हैं। 1. लिंगमूल में लक्षित पूर्वाम्नाय में उन्मनी, पूर्णेशी और भुवनेश्वरी देवियों से युक्त द्वीपेश्वरशाम्भव दीक्षा, 2. मणिपुर में लक्षित दक्षिणाम्नाय में आद्या, श्यामा और दक्षिणा देवियों सहित संवर्तेश्वरशाम्भवदीक्षा, 3. स्वाधिष्ठान में लक्षित पश्चिमाम्नाय में कुब्जिका, वज्रकुब्जिका और अघोरकुब्जिका देवियों से युक्त सर्वाधिकारविद्या नामक चतुरन्वयशाम्भव दीक्षा, 4. अनाहत में लक्षित उपाम्नाय (अनुत्तराम्नाय) में महापूर्वा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती और चामुण्डा देवियों सहित महाविद्येश्वरशाम्भव दीक्षा, 5. विशुद्धि

में लक्षित उत्तराम्नाय में सिद्धि, लक्ष्मी, महासिद्धि, करालिका, कामकला और गुह्यकाली देवियों से युक्त हंसशाम्भव दीक्षा, तथा 6. आज्ञा में लक्षित ऊर्ध्वाम्नाय में बाला, पंचदशी और षोडशी देवियों सहित परेश्वरशाम्भव दीक्षा होती है। उक्त (6 प्रकार की) षडन्वय शाम्भव दीक्षा में भी प्रत्येक अन्वयदीक्षा के अन्तर्गत हादिनवक्रम, कादिनवक्रम, महाक्रम और पूर्णक्रम नामक दीक्षा होती है। इस प्रकार 6 गुणा 4 = 24 क्रमदीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् सर्वाधिकार दीक्षा होती है। तदनन्तर शेष 27 दीक्षाओं को (परम्परा से जानने योग्य विषय होने से और ग्रन्थ के विशाल काय होने के भय से उन सबका यहां वर्णन करना संभव नहीं है) को विधिपूर्वक ग्रहण करने के पश्चात् पूर्णाभिषेक होता है।

महानिर्वाणतन्त्र में पूर्णाभिषेक के माहात्म्य के विषय में इस प्रकार लिखा है–

''पूर्णाभिषिक्तः सत्कौलो यस्मिन्देशे विराजते।
धन्यो मान्यः पुण्यतमः स देशः प्रार्थ्यते सुरैः।।
कृतपूर्णाभिषेकस्य साधकस्य शिवात्मनः।
पुण्यपापविहीनस्य प्रभावं वेत्ति को भुवि।।
केवलं नररूपेण तारयन्नखिलं जगत्।
शिक्षयन्लोकयात्रां च कौलो विहरति क्षितौ।।
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि ब्रह्माद्याः सर्वदेवताः।
वसन्ति कौलिके देहे किन्न स्यात्कौलिकार्चनात्।।''

अर्थात् जिस देश में पूर्णाभिषिक्त कौल रहेगा वह देश धन्य, मान्य और पुण्यतम होने से देवताओं के द्वारा भी अभिलषित होता है, क्योंकि पूर्णाभिषिक्त कौल पुण्यपापरहित साक्षात् शिव होने से उसके प्रभाव को इस पृथिवी में कोई नहीं जान पाता है यानि कोई भी उसे नहीं पहचान पाता हैं। केवल एक साधारण मनुष्य जैसे रहते हुये लोक (जन्म–मरण के चक्कर) से मुक्त होने के तरीके की शिक्षा देते हुये संपूर्ण जगत को तारते हुये

इस धरती पर विचरता रहता है। कौलपुरुष की देह में साढे तीन करोड तीर्थ सहित ब्रह्मा आदि समस्त देवता वास करते हैं इसलिये कौलिक की पूजा करने से क्या नहीं प्राप्त होगा यानि सब कुछ प्राप्त होगा।

3. गुरुतत्त्वविषयकविचारः–

अनेकों शास्त्रों में यह प्रसिद्ध श्लोक है–

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।"

अर्थात् सगुण साकार जगत में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर– ये तीनों देवता और उनके पूर्ण अवतार अथवा उनके अंश अवतार गुरु हैं, लेकिन निर्गुण निराकार दृष्टि से पर ब्रह्म यानि अपनी आत्मा ही साक्षात् यानि सर्वनिरपेक्ष गुरु है। किन्तु आत्मा को गुरु मानकर संसार से तर जाना अत्यन्त कठिन है, इसलिये इस कलियुग में एक अपने से श्रेष्ठ ज्ञानवृद्ध को गुरु मानकर आध्यात्मिक यात्रा शुरु करनी पडती है, जैसे जैसे साधना में तीव्रता आयेगी और आत्मानुभूति का भूख बढेगी वैसे वैसे सद्गुरु का सान्निध्य प्राप्त होता जायेगा। इसलिये जगद्गुरु आद्य श्रीशकराचार्यजी ने विवेकचूडामणि में कहा है–

"दुर्लभं त्रयमेवैतत् दैवानुग्रहहेतुकं।
मनुष्यत्वं मुमुषुत्वं महापुरुषसंश्रयः।"

मनुष्यत्व, मुमुषुत्व और सद्गुरु की प्राप्ति– ये तीनों ईश्वर की कृपा के विना अत्यन्त दुर्लभ है।

गुरु शब्द क अर्थ अनेक हं किन्तु प्रकरण के अनुसार यह है–

"गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।।"

वह गुरु भी तीन प्रकार के हैं, जैसे की ब्रह्मविद्योपनिषद में कहा है–

"चोदको बोधकश्चैव मोक्षदश्च परः स्मृतः।।" (51)

अर्थात् चोदक, बोधक और मोक्षद नाम से तीन प्रकार

के गुरु हैं। इसका स्पष्टीकरण अन्यत्र इस प्रकार है–

"चोदको दर्शयेन्मार्गं बोधकः स्थानमाचरेत्।
मोक्षदस्तु परं तत्त्वं यज्ज्ञात्वा परमश्नुते।।"

अर्थात् चोदकगुरु वह है जो केवल साधना के बारे में मार्गदर्शन देता है, बोधकगुरु वह है जो अपने पास रख कर स्वयं शिष्य से अनुष्ठान कराता है और मोक्षदगुरु वह है जो परमतत्त्व

"तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं"
(मुण्डकोपनिषद् 1.2.12)

अर्थात् इस ब्रह्मतत्त्व को जानने केलिये सकल कामनाओं से रहित होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ (इसी को 'त्वद्रूपस्य' शब्द से कहा है) गुरु के पास जाना चाहिये। अतः त्वद्रूपस्य शब्द से कथित ब्रह्मनिष्ठ का विशेषण है 'श्रोत्रियं', जिसका अर्थ है–

"जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैः द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते।।"

अर्थात् ब्राह्मण कुल में जन्म होने से जो ब्राह्मण है, गर्भाधान से आरम्भ कर समय समय पर सब संस्कार से संस्कारित है जो वह द्विज कहा जाता है और विधि विधान से वेद आदि विद्या को प्राप्त कर लेने पर वह विप्र कहा जाता है। जिस व्यक्ति में इन तीनों (ब्राह्मणत्व, द्विजत्व, विप्रत्व) का संगम है उसी को श्रोत्रिय कहा जाता है। जिसके अनेकों जन्मों के त्याग तपस्या

का उपदेश देता है जिसको जानने से यानि अनुभव करने से साधक मुक्त हो जाता है। प्रकारान्तर से भी गुरु तीन प्रकार के है– दिव्यगुरु, सिद्धगुरु और मानवगुरु। पुनः प्रत्येक के तीन तीन भेद होने से प्रकाशानन्दनाथ से लेकर सुभगानन्दनाथ पर्यन्त नौ प्रकार के माने गये है। इस स्तोत्र के 25वें श्लोक में सद्गुरु के बारे में बताया है कि "सद्गुरोः त्वद्रूपस्य......संप्राप्य दीक्षां", यहां 'त्वद्रूपस्य' विशेषण महत्त्वपूर्ण है, इसका अर्थ है सद्गुरु वही है जो अभेदरूपता में प्रतिष्ठित है, इसलिये श्रुति भी कहती है–

और महान पुण्य राशि का फल भाग्य से उदय हो उसे निश्चित रूप से ऐसे सद्गुरु प्राप्त होते हैं और इस वर्तमान जन्म में ही वह मुक्त हो जायेगा, इसमें काई संशय नहीं है। गुरु तत्त्व की संक्षिप्त व्याख्या ही यहां की गयी है क्योंकि यह विषय अत्यन्त गूढ है। ब्रह्मनिष्ठता यानि त्वद्रूपता को प्राप्त करने के अनेक साधन है किन्तु न्यासों के अभ्यास से यह सरलता पूर्वक संभव है, अतः परिशिष्ट के दूसरे पटल मेंडालने का प्रयास किया गया है।

परिशिष्टः

द्वितीयः पटलः

1. न्यास पर सामान्य विचारः–

न्यास का अर्थ है एक वस्तु को दूसरे वस्तु में अभेद कर स्थापित करना। लेकिन इस स्थल पर विधान किया गया न्यास तो आगम में दर्शाये अनुक्रम से देवता आदि दैवी तत्त्वों को अपने शरीर के विभिन्न अंगप्रत्यंगों को हाथ की अंगुलियों के विशेष आकार अर्थात् आगम शास्त्र में वर्णित मुद्रा से स्पर्श करके तत्तद देवता को अपने शरीर में निविष्ट होने की भावना कर स्थापित करना है। साथ ही यह भावना भी करना है की अंगप्रत्यंग में सूक्ष्म रूप से विद्यमान मल दूर हुआ तथा मैं शारीरक और मानसिक रूप से अत्यन्त विशुद्ध हो गया हूँ एवं अब मैं शुद्ध सत्त्व प्रधान दैवी शरीर युक्त हूँ। उपासना काल पर्यन्त इसी भावना से

युक्त रहकर संपूर्ण पूजा, अर्चना, ध्यान, हवन आदि करना चाहिये। ''देवो भूत्वा देवान् यजेत् ''– यह श्रौत सिद्धान्त है। इसलिये कहा है कि वह गुरु व साधक साक्षात् आप ही हैं अर्थात् देवी का ही रूप है। इस अतिमानुषिक स्थिति का चमत्कार न्यास प्रयोग द्वारा ही अनुभवहोता है।

'नित्योत्सव' नामक ग्रन्थ के अनुसार पंचदशी के उपासक केलिये न्यूनतम 14 न्यासों (मातृका, करशुद्धि, आत्मरक्षा, चतुरासन, बालाषडंग, वशिन्यादि, मूलविद्या, षोढा, श्रीचक्र, षोडशाक्षरी, सम्मोहन, संहार, सृष्टि और स्थिति) का विधान किया है। 'वामकेश्वर तन्त्र' के अन्तर्गत 'नित्याषोडशिकार्णव' में 4 गणों (करशुद्धि, षोढा, अणिमादिक और मूलदेव्यादिक) में संगृहीत 44 न्यासों का विधान किया है। कुछ ग्रन्थों में 64, कुछ अन्य में 55, तथा कुछ अन्यों में 48 एवं 36 न्यासों का भी वर्णन है। इन न्यासों को प्रातःकाल, पूजाकाल, होमकाल और जपकाल में करने का विधान है किन्तु प्रतिदिन चारों काल में न्यास करने का समय न मिले तो पूजाकाल में अवश्य करना ही चाहिये, जैसे कि कहा है–

''पूजाकाले समस्तं वा कुर्यात् साधकपुंगवः।''

यहां हम 9 गणों में संगृहीत 55 न्यासों की सूची दे रहे हैं। प्रथमगण मातृकान्यासः– 1. अन्तर्मातृका, 2. बहिर्मातृका, 3. करशुद्धि, 4. आत्मरक्षा, 5. बालाषडंग, 6. चतुरासन, 7. वाग्देवतादि, 8. बहिश्चक्र, 9. अन्तश्चक्र, 10 कामेश्वर्यादि, 11. मूलविद्या न्यास। द्वितीयगण महाषोडशाक्षरीन्यासः– 12. संहार, 13. सृष्टि, 14. स्थिति न्यास। तृतीयगण लघुषोढान्यासः–15. गणेश, 16. ग्रह, 17. नक्षत्र, 18. योगिनी, 19. राशि, 20. पीठन्यास। चतुर्थगण श्रीचक्रन्यासः– 21. त्रैलोक्यमोहनचक्र, 22. सर्वाशापरिपूरक चक्र, 23. सर्वसंक्षोभणचक्र, 24. सर्वसौभाग्यदायकचक्र, 25. सर्व रक्षाकरचक्र, 26. सर्वार्थसाधकचक्र, 27. सर्वरोगहरचक्र, 28. आयुध, 29. सर्वसिद्धिप्रदचक्र, 30. सर्वानन्दमयचक्र न्यास। पंचमगण महाषोढान्यास :– 31. प्रपंच, 32. भुवन, 33. मूर्ति, 34. मन्त्र, 35.

देवता, 36. मातृकाभैरव न्यास। षष्ठगण हृल्लेखादिन्यासः– 37. हृल्लेखा, 38. श्रीबीजादिमातृका, 39. कामबीजादिमातृका, 40. त्रिबीजादिमातृका, 41. बालाविद्या, 42. परासंपुटितमातृका, 43. श्रीविद्यायुक्तमातृका, 44. हंसमातृका, 45. परमहंसमातृका न्यास। सप्तमगण कलान्यासः– 46. प्रणवोत्थकलान्यास, 47. तारोत्थ कलान्यास। अष्टमगण श्रीकण्ठादिः– 48. श्रीकण्ठादिन्यास, 49. केशवादिन्यास, 50. पूर्वषोढान्यास। नवम गण तत्त्वादिन्यासः– 51. षट्त्रिंशत्तत्त्वन्यास, 52. चतुष्तत्त्वन्यास, 53. महाशक्तिन्यास, 54. षडंगयुवतिन्यास और 55. सम्मोहनन्यासः।

जैसे पूर्व में ही बताया गया है कि 16 न्यास न्यूनतम करना चाहिये किन्तु कुछ विद्वानों का मानना है कि ऋष्यादि न्यास, हृदयादिन्यास और करन्यास करके नित्य जप कर सकते हैं।

2. न्यास और दीक्षा का लक्ष्यः–

न्यास और दीक्षा का लक्ष्य है शिवशक्त्यैक्यता को अनुभव करना, जो कि श्रीचक्र और संसारचक्र की ऐक्यता को जानकर उसकी शरीरचक्र में अभेद भावना के द्वारा संभव है। इसलिये ललितासहस्रनाम स्तोत्र के अन्त में कहा है–

''शिवशक्त्यैक्यरूपिणी''

और अन्यत्र भी कहा है–

''न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः''।

तात्पर्य यह है कि शिव और शक्ति में वास्तविक कोई भेद नहीं है। इस विषय में अभिनवगुप्ताचार्यजी का कथन है –

''स्वात्मजाः सृष्टिसंहाराः स्वरूपत्वेन संस्थिता।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव।।''

अर्थात् अपने में ही उत्पन्न सृष्टि से संहार तक की क्रिया अपने स्वरूप में ही स्थित है, ऐसे स्वरूपवाले आप दोनों की एकता अग्नि और उष्णता के समान है। अतः शिवचक्र और

शक्तिचक्र का संयुक्त रूप ही श्रीचक्र है, जैसे कि चतुःशती में कहा है–

"चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पंचभिः।
शिवशक्तिमयं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।।"

शिव शक्ति के ऐक्य रूपी श्रीचक्र की संसारचक्र के साथ ऐक्यता कैसे? उत्तरः जिन अक्षरों से श्रीचक्र का प्रसार हुआ है उन्हीं अक्षरों से संसारचक्र का भी विस्तार हुआ है, अतः दोनों अभिन्न है, जैसे कि ज्ञानार्णव में कहा है–

"लकारः पृथिवीबीजं तेजो भूबिम्बमुच्यते (1)।
सकारश्चन्द्रमा भद्रे कलाषोडशकात्मकः।।
तस्मात्षोडशपत्रं च (2) हकारः शिव उच्यते।
अष्टमूर्तिः सदा भद्रे तस्माद्वसुदलं भवेत् (3)।।
ईकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश।
पालयन्ती परा तस्माच्छक्रकोणं भवेत् प्रिये (4)।।
शक्तिरेकादशस्थाने स्थित्वा सूते जगत्त्रयम्।
विष्णोर्योनिरिति ख्याता सा विष्णोर्दश रूपकम्।।
एकारात्परमेशानि चक्रं व्याप्य व्यवस्थिता (5)।
दशकोणकरं तस्मात्प्रकारो ज्येतिराख्य यः।।
कला दशान्वितो वह्निर्दशकोणप्रवर्तकः (6)।
ककारान्मदनो देवि शिवं चाष्टस्वरूपकम्।।
योनिवश्यं तदा चक्रं वसुयोन्यंकितं भवेत् (7)।
अर्द्धमात्रा गुणान्सूते नाद रूपा यतः स्मृतः।।
त्रिकोणरूपा योनिस्तु (8) बिन्दुना बैन्दवं भवेत्।
कामेश्वरस्वरूपं तद्विश्वाधारस्वरूपकम्।।
श्रीचक्रन्तु वरारोहे श्रीविद्यावीर्यसंभवम् (9)।।"

अर्थात् 1. ल इस पृथिवीबीज से श्रीयन्त्र का भूपुर बना, जिसमें तीन रेखायें है। 2. स इस चन्द्रबीज से षोडशदल बना।

3. ह का अर्थ है शिव और वह शिव अष्टमूर्तिरूपा होने के कारण उससे अष्टदल बना। 4. ई तुरीया रूपी माया से चतुर्दशार बना। 5. ए इस दशावतारविष्णु के जगत की उत्पत्ति और पालन करनेवाली शक्ति से बहिर्दशार बना। 6. र इस दशकला युक्त वह्नि के प्रतीक वह्निबीज से अन्तर्दशार बना। 7. क इस अष्टमूर्तिस्वरूप शिव से पुनः वसुकोण बना। 8. ˘ अर्द्धमात्रा यानि नाद से त्रिशक्तिरूप त्रिकोण बना। 9. • बिन्दु से बैन्दवचक्र बना है। उक्त अक्षरों से ही सृष्टिचक्र की संरचना हुयी है, कैसे? ज्ञानार्णव में ही जवाब दिया है–1. ल से पर्वत, नदी, वन, आदि युक्त पृथिवी बनी है। 2. स से ग्रहगण सहित नक्षत्र आदि तारामण्डल युक्त चन्द्र बना है। 3. ह से शिवयुक्त आकाश मण्डल बना है। 4. ई से विश्व की उत्पत्तिकारिणी माया शक्ति बनी है। 5. ए से विश्व पालनकारिणी वैष्णवी शक्ति बनी है। 6. र से तेजोमयी विश्वसंहारकारिणी रौद्रीशक्ति बनी है। 7. क से कामप्रदा अव्ययरूपिणी कामशक्ति बनी है। 8. ˘ अर्द्धचन्द्र से विश्वोत्पादनकारिणी औन्मुखीशक्ति बनी है। 9. • बिन्दु से विश्वसाक्षिणी चिच्छक्ति बनी है। इस प्रकार श्रीचक्र और संसारचक्र की ऐक्यता सिद्ध हुयी। भैरवयामल के ज्ञानविद्या प्रकारण में शिवजी कहते हैं –

"साधु साधु महाभागे पृष्टं त्रैलोक्यसुन्दरि।
चक्रं त्रिपुरसुन्दर्याः ब्रह्माण्डाकारमीश्वरी।।"

संसारचक्र से अभिन्न श्रीचक्र की पिण्डचक्र यानि मनुष्य के शरीर के साथ एकता भावनोपनिषद् में इस प्रकार की है–

" तेन नवरन्ध्ररूपो देहः (2)"

अर्थात् उस गुरु तत्त्व से नौ छिद्रोंवाला (दो कान, दो आंख, दो नाक, मुख, गुदा और जननेन्द्रिय) यह मानव आदि के शरीर निर्मित है, उसी के समान श्रीचक्र के बारे में कहे हैं–

"नवचक्ररूपं श्रीचक्रं (3)"

अर्थात् श्रीचक्र नौ चक्रोंवाला है तथा

"देहो नवरत्नद्वीपः"

अर्थात् नवरत्नों (हड्डी, मांस, खून, शुक्र, शोणित, मेदा, मज्जा, त्वचा और रोम) से बना द्वीप के समान यह शरीर है। जिसका वर्णन कामिका में इस प्रकार है–

"त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिधातवः शक्तिमूलकाः।
मज्जाशुक्रप्राणजीवधातवः शिव मूलकाः।।"

अर्थात् शक्ति से इस शरीर के चमडा, खून, मांस, मेदा और हड्डी बने हैं तथा शिव से मज्जा, वीर्य, प्राण और जीव बने हैं। इसलिये भी यह शरीर शिवशक्त्यात्मक है। सौभाग्य लक्ष्म्युपनिषद् में भी शरीर में 9 चक्रों का वर्णन तृतीय खण्ड के मंत्र संख्या 1 से 9 में किया है, वे हैं– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, तालु, आज्ञा, सहस्रार और आकाश चक्र। वास्तव में चार प्रकार की ऐक्यता का चिन्तन करने का विधान है –

"पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिंगसूत्रात्मनोरपि।
स्वापाव्याकृतयोरैक्यं क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः।।"

1. बाह्य दृश्यमान स्थूल संसारचक्र और अपना स्थूल देहचक्र, 2. व्यष्टि यानि अपना सूक्ष्मशरीर और समष्टि यानि संसार का सूक्ष्मशरीर, 3. सुषुप्ति यानि अपना कारणशरीर और अव्याकृत यानि संसार का कारणशरीर, 4. जीवात्मा और परमात्मा – इन चारों की परस्पर ऐक्यता के चिन्तन से अन्त में आप ही रह जायेंगे, यही मुक्ति है। विस्तृत जानकारी केलिये पाठक स्वयं अपने गुरुमुख से त्रिपुरोपनिषद्, भावनोपनिषद्, सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद आदि का अध्ययन करें।

3. मन्त्र–एक संक्षिप्त विचार

"मनु अवबोधने" धातु से "ष्ट्रन्" प्रत्यय होकर मन्त्र शब्द बनता है, जिसका अर्थ है 'जिसके द्वारा लक्ष्य को जाना जाय'। किन्तु मीमांसा दर्शन में इसका लक्षण बताया है–

"प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः मन्त्राः"

अर्थात् कर्म, उपासना व ज्ञान के अनुष्ठान अथवा अभ्यास में विद्यमान पदार्थ यज्ञीय द्रव्य, देवी, देवता, आत्मा, उनके क्रम आदि को स्मरण करानेवाले शब्दसमूह मन्त्र है। वेदों, स्मृतियों और आगमों में अनेक प्रकार के मन्त्र है। उनका प्रयोग गुरु से जानकर, प्राप्तकर और गुरु के निर्देशन में ही करना चाहिये क्योंकि जैसे पेड में लगे फलों में एक फल पर भी पक्षी के द्वारा चोंच मारने पर पेड के समस्त फल मीठे होते हैं उसी प्रकार गुरुमुख से प्राप्त मन्त्र ही सुफल देने में समर्थ होता है। इसलिये छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है–

"आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापदिति" (4.9.3)

अर्थात् गुरुमुख से प्राप्त की गई विद्या ही अतिशय फल प्राप्त कराता है। मन्त्र एक अक्षर से लेकर कितनी भी संख्या का हो सकता है। साधक के द्वारा इच्छित फल और लक्ष्य पर तथा परम्परा पर आधारित होकर गुरु ही तय करते हैं कि कितने अक्षर का मन्त्र देना है। कुछ मन्त्र ऐसे हैं जो संस्कार के साथ अनिवार्य होते हैं, जैसे उपनयन संस्कार के साथ गायत्री मन्त्र, संन्यास संस्कार के साथ प्रैष मन्त्र इत्यादि, लेकिन इनका फल साधक पर निर्भर है, क्योंकि संकल्प में क्रिया कर्म द्वारा प्राप्य जैसे फल की कामना करेगा वैसा ही फल मिलेगा। इसलिये व्यक्ति को सोच समझकर ही अपने दैनिक कर्मों में संकल्प करना चाहिये। अनेकाक्षरवाले मन्त्रों की अपेक्षा बीजात्मक मन्त्र अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं। अतः कुछ विद्वान् ज्योतिषि जन्म कुण्डलि के अधार पर व्यक्ति के इह लोक, परलोक और आध्यात्मिक सर्वांगीन समृद्धि केलिये बीजमन्त्र देते हैं, जिस के जपने केलिये न्यासादि अथवा दीक्षा की भी आवश्यकता नहीं है। जैसे कि पूर्व में बताया गया है कि श्रद्धा ही फल प्राप्ति का मुख्य साधन है, सत्यकाम जाबाल, उद्दालक, दस्यु रत्नाकर (वाल्मीकी), एकलव्य आदि अनेकों दृष्टान्त इस विषय में प्रमाण है।

परिशिष्टः

तृतीयः पटलः

प्रकीर्णविषयकविचारः

1. त्रिपुरशब्दविचार

यद्यपि त्रिपुर शब्द के विषय में स्तोत्र की व्याख्या में ही विचार किया गया है तथापि कुछ ज्ञातव्य शेष को यहां बताया जा रहा है। कालिका पुराण में कहा है–

''प्रधानेच्छावशाच्छम्भोशरीरमभवत्त्रिधा।
तत्रोर्ध्वभागः संजातः पंचवक्त्रश्चतुर्भुजः।।
पद्मकेशरगौरांगः कायो ब्राह्मो महेश्वरे।
तन्मध्यभागो नीलांगः एकवक्त्रश्चतुर्भुजः।।
शंखचक्र गदापद्मपाणिः कायः स वैष्णवः।
अभवत्तदधोभागे पंचवक्त्रश्चतुर्भुजः।।
स्फटिकाभवर्णशुक्लः स कायस्चन्द्रशेखरः।
एवं त्रिभिस्पुरैर्योगात् त्रिपुरः परमः शिवः।।''

अर्थात् परम शिव की प्रधान इच्छाशक्ति से शरीर के तीन भाग हो गये, ऊपर के भाग से कमल का केसर के समान श्वेत रंग युक्त चतुर्भुज पंचमुख ब्रह्मा, मध्यभाग से श्याम रंग युक्त शंख चक्र गदा और कमल को हाथों में लिये हुये चतुर्भुज एकमुख विष्णु और अधो भाग से स्फटिक के समान श्वेत रंग युक्त चतुर्भुज पंचमुख शिव का शरीर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार तीन शरीर रूपी तीन पुरों के योग से परम शिव त्रिपुर कहलाते हैं। त्रिपुर की स्वाभिन्ना पत्नी परा शक्ति को त्रिपुरा कहते है। संबोधन में ''हे त्रिपुरे'' शब्द बनता है।

2. कूटत्रयपरविचार

कूटत्रय के विषय में श्रीपराविभूतिस्तोत्र में इस प्रकार कहा है–

''वागर्थयोर्ननु परस्परमेलनं यत्संमीलितौ च शिवशक्तिमयौ तथैव।
सष्टिस्थितिप्रलयभेदमयौ भेदहौ बीजत्रयात्मवपुषा भवतस्त्रिभिन्नौ।।''

अर्थात् शब्द और अर्थ का जो परस्पर अभेद रूप से संबद्ध रहता है वही शिवशक्ति का सामरस्य स्वरूप है। यद्यपि सृष्टि, स्थिति और प्रलय रूपी भेद का अज्ञान के कारण भले ही अनुभव हो तथापि वे भेदनाशक हैं। केवल आप बीज त्रय रूपी कलेवर धारण कर यानि उपाधि के रूप में स्वीकार कर त्रिभेद से प्रतीत होते हैं। अतः बिन्दुत्रय का समष्टि स्वरूप कामकला अक्षर रूपिणी त्रिबीज अभिन्ना महात्रिपुरसुन्दरी है। कूटत्रय को बीजत्रय (वाग्भव,कामराज,शक्ति) के रूप में यहां कहा है। तात्पर्य यह है की त्र्यक्षरी बीजत्रय और पंचदशाक्षरी कूटत्रय का परस्पर अभेद सिद्ध किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि कूटत्रय का बीज त्रय में अन्तर्भाव करके फिर बीजत्रय का '' सौः '' इस बीज में अन्तर्भाव किया है, इस स्तोत्र के 11वें श्लोक में। इस विषय में वामकेश्वरतन्त्र में यह कहा है–

''तत्त्वत्रयविनिर्दिष्टा वर्णशक्तित्रयात्मिका।
वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवे मोक्षदायिनी।।
कामराजे कामकला कामरूपा त्रयात्मिका।
शक्तिबीज पराशक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी।।
एवं देवी त्र्यक्षरात्मा महात्रिपुरसुन्दरी।
पारम्पर्योण विज्ञाता भवबन्धविमोचिनी।।''

अर्थात् तत्त्व त्रय से निर्दिष्ट है वर्ण त्रय यानि बीज त्रय जो शक्ति त्रय ही है। अतः वाग्भव बीज में मोक्षदायिनी वागीश्वरी ज्ञानशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। कामराज बीज में कामरूपा कामकला त्रयात्मिका (सृष्टि, स्थिति और प्रलय कारिणी) क्रियाशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। शक्ति बीज में शिवात्मिका पराशक्ति इच्छाशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार त्रिबीजान्तर्भूता

त्र्यक्षरात्मिका त्रिकूटाभिन्ना त्रिशक्तिस्वरूपिणी है महात्रिपुरसुन्दरी।

3. विद्याविषयकविचार

इस लोक में विद्या दो प्रकार की है– आध्यात्मिकी और लौकिकी। इनमें से आध्यात्मिकी विद्या अनेकों है, यहां हम केवल शाक्त दर्शन सम्मत आध्यात्मिकी विद्या को संक्षेप में दर्शा रहे हैं। यद्यपि मूलविद्या अथवा आदिविद्या नाम से प्रसिद्ध पंचदशाक्षरी मन्त्र (कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं) को त्रिकूटात्मक (पहलाखण्ड वाग्भवकूट, दूसराखण्ड कामकूट और तीसराखण्ड शक्तिकूट) नाम से भी जाना जाता है तथापि व्यष्टिसमष्टिजाग्रदादि बारह धाम में भावनीय बारह विद्यायें हैं, जो द्वादशविद्या नाम से जानी जाती हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैं– 1. सक –शक्तिशिवविद्या, 2. हसकहलह्रीं –लोपामुद्राविद्या, 3. हसकहलह्री (बिन्दु रहित ह्री) – क्रोधमुनिविद्या (दूर्वासाविद्या), 4. हसकलह्रीं कएईहलह्रीं सकलह्रीं – मानवी विद्या(हादि विद्या), 5. हसकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं –चान्द्री विद्या, 6. हसकहलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं –कौबेरीविद्या, 7. हसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं –अगस्त्य विद्या, 8. हहसकहसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं – नन्दिविद्या, 9. कएईलह्रीं हसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं –प्रभाकरी विद्या, 10. ह्रींक्लींहंसःक्लींलंह्रीं हस कहलह्रीं सोऽहं क्लींहंसः ह्रींहंसः सोऽहं हंसः –षण्मुखीविद्या, 11. ह्रींक्लींहंसः क्लींलंह्रीं हसकहलह्रीं सोऽहं क्लींहंसः ह्रींहंसः सोऽहं हंसः हसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं –परमशिवविद्या, 12. हसकएलह्रीं हसहसकहलह्रीं हससकलह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं कए ईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हसकहलह्रीं हसकहलह्रीं सकहलह्रीं – वैष्णवीविद्या। इनको त्रिपुरातापिन्योपनिषद् (1.27–1.38) में संकेत मात्र से बताया है। इसलिये परम्परा के अनुसार गुरुमुख से ही जानकर इनका प्रयोग करना चाहिये।

दूसरी लौकिकीविद्या में सर्वसामान्य 64 विद्यायें प्रसिद्ध

हैं। वे इस प्रकार है– 1. संगीतं, 2. वाद्यं, 3. नृत्यं, 4. आलेख्यं, 5. तण्डुलादिबलिविकाराः, 6. नाट्यं, 7. पुष्पास्तरणं, 8. दशनवसनांग रागाः, 9. मणिभूमिकाकर्म, 10. शयनरचना, 11. उदकवाद्यं, 12. चित्र योगः, 13. चित्रमाल्यग्रथनविकल्पः, 14. शेखरापीडयोजना, 15.नेपथ्य योगः, 16. कर्णपत्रभंगिः, 17. सुगन्धयुक्तिः, 18. भूषणयोजना, 19. ऐन्द्रजालः, 20. हस्तलाघवं, 21. क्रौंचमारणयोगः, 22. चित्रशाकापूप भक्षविकारक्रिया, 23. पानकरसरागासवयोजना, 24. सूचीवयनकर्म, 25. सूत्रक्रिया, 26. डमरुवीणावाद्यादि, 27. प्रहेलिका, 28. प्रतिमाला, 29. दुर्वचकयोगः, 30. पुस्तकवाचनं, 31. नाटकाख्यायिकादर्शनं, 32. काव्यसमस्यापूरणं, 33. पट्टिकावेत्रबाणविकल्पः, 34. तर्कुकर्म, 35. तक्षणं, 36. वास्तुविद्या, 37. रूप्यरत्नपरीक्षा, 38. धातुविद्या, 39. मणि रागज्ञानं, 40. आकरज्ञानं, 41. वृक्षायुर्वेदज्ञानं, 42. मेषकुक्कुटादियुद्ध विधिः, 43. शुकशारिकाप्रलापनं, 44. उत्सादनं, 45. अक्षरमुष्टिका कथनं, 46. केशमार्जनकौशलं, 47. अंगुल्यक्षरचना, 48. देशभाषाज्ञानं, 49. पुष्पशकटिका, 50. निमित्तज्ञानं, 51. यन्त्रमातृका, 52. धारण मातृका, 53. संवाच्यं, 54. मानसीकाव्यक्रिया, 55. अभिधानविद्या, 56. छन्दोज्ञानं, 57. क्रियाविकल्पः, 58. वस्त्रगोपनादिः, 59. चलितकयोगः, 60. द्यूतविशेषः, 61. आकर्षणक्रिया, 62. बालक्रीडन कादि, 63. विशेषकछेद्यकतिलकादिरचना, 64. वैयासिकीवैनायिकी विद्यानां ज्ञानं च। ये सब महामाया द्वारा संसार में जीव को बांधने केलिये ही संसार में फैलायी गयी है। अतः इन से साधक को बचना चाहिये।

4. मातृकाशक्ति पर विचार

मनुष्य शरीर में इस संसार के कारणभूता बिन्दुशक्ति को ही कुण्डलिनी शक्ति के रूप में मूलाधार चक्र में माना है। इसलिये कहा है–

"शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारोद्बोद्यमं।

ज्ञात्वेत्थं न पुनर्भवन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नरः।।''

विश्व की उत्पत्त्यादि केलिये उद्यत पराशक्ति ही कुण्डलिनी शक्ति है, इस प्रकार जानकर मनुष्य मातृगर्भ में दोबारा शिशु नही बनेगा अर्थात् मुक्त हो जायेगा। इसी प्रकार की उक्ति अन्यत्र भी इस प्रकार है –

''मूलाधारात्प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः।
पश्चात्पश्यन्नथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।।
व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोऽस्य जन्तोः सुषुम्ना।
बद्ध एतस्माद्भवति पवने प्रेरिता वर्णसंज्ञा।।''

अर्थात् प्राण से प्रेरित होकर कुण्डलिनी शक्ति जब मूलाधार से उदित होती है तब जो प्रथम भाव पदार्थ प्रकट होता है उसका नाम परा है। वही शक्ति सुषुम्ना नाडी से ऊपर उठकर जब मणिपुर में पहुँचती है, तो उसका नाम पश्यन्ती है। वही पुनः बुद्धि से युक्त होकर हृदयदेश में जब प्रकट हो जाती है तो उसका नाम मध्यमा है। अन्त में वही शक्ति पुनः जब जीव बोलना चाहता है तब वर्णों की अभिव्यक्ति द्वारा वैखरी नाम से जाना जाता है, जिससे यह जीव बद्ध हो जाता है। इसलिये ललितासहस्रनामस्तोत्र में कहा है–

''परा प्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता।
मध्यमावैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।।''

स्वयं देवी अनेक रूप धारण कर प्रत्येक वर्ण यानि मातृका की अभिमानी शक्ति बनकर उन पर आरूढ है। वे क्रम से इस प्रकार हैं:– जैसे कि स्वरों में, अ–कीर्तिः, आ–कान्तिः, इ–तुष्टिः, ई–पुष्टिः, उ–धृतिः, ऊ–शान्तिः, ऋ–क्रिया, ॠ–दया, लृ–मेधा, ॡ –हर्षा, ए–श्रद्धा, ओ–लज्जा, ऐ–सरस्वती, औ–लक्ष्मीः, अं–प्रीतिः, अः–रतिः। व्यंजनों में, क–जया, ख–दुर्गा, ग–प्रभा, घ–सत्या, ङ– चण्डा, च–वाणी, छ–विलासिनी, ज–विजया, झ–विरजा, ञ–विश्वा, ट–विनदा, ठ–सुनदा, ड–स्मृतिः, ढ–ऋद्धिः, ण–समृद्धिः,

त–शुद्धिः, थ–भक्तिः, द–बुद्धिः, ध–मतिः, न–क्षमा, प–रमा, फ–उमा, ब–मेदिनी, भ–क्लिन्ना, म–वसुदा, य–वसुधा, व–परा, र–परायणा, ल–सूक्ष्मा, श–सन्ध्या, ष–प्रज्ञा, स–सुप्रभा, ह–निशा, ज्ञ–अमोघा और क्ष–विद्युता। कुल 51 शक्ति हैं, इनमें से प्रत्येक का ध्यान परम्परा के अनुसार गुरुमुख से ही जानकर करना चाहिये।

5. कवित्व पर विचार

श्लोकसंख्या 19 और 57 में क्रमशः "सुकविः" और "विचित्र कवितां" शब्दों के द्वारा महामुनि दूर्वासाजी जो कहना चाहते हें उसको स्पष्टरूप से जगद्गुरु श्रीआद्यशंकराचार्यजी ने सौन्दर्यलहरी में इस प्रकार कहा है–

"सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभंगरुचिभिः,
वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि संचिन्तयति यः।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भंगिरुचिभिः,
वचोभिर्वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः।।" (17)

अर्थात् हे वाचां जननि!= हे वाणी को जन्म देनेवाली! चन्द्रकान्त मणि का खण्ड के समान चमकनेवाली, सूर्य के समान गूढार्थरूपी प्रकाश युक्त, वशिनी आदि देवियों के सहित (अ,क,च,ट,त,प,य,श – अष्ट वर्गात्मिका सप्तमावरणरूपी सर्वरोग–हरचक्र में देदीप्यमान वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी और कौलिनी), जो साधक आपका सम्यक् प्रकार से ध्यान करता है वह अनेक प्रकार के शब्द व्यूह की संरचना करके और अनेक अर्थ युक्त सरस्वती के मुख कमल के सौन्दर्य के समान आनन्दित करनेवाले मधुर वाक्य संरचना से बडे बडे काव्यों का रचयिता बनता है। तात्पर्य यह है कि जिसके ऊपर भगवती सरस्वती का कृपा कटाक्ष पड जाता है वह तो महाकवि कालीदास के समान महान हो जाता है और जिससे भगवती सरस्वती ने अपनी दृष्टि फेर ली है वह कोरा पण्डित ही रह जायेगा। उसकी कविता आदि में सर्वाह्लदकता और रोचकता युक्त चमत्कार नहीं रहता। भगवती की कृपा पाने केलिये उपासना

अत्यन्त आवश्यक है। किसी अन्य कवि ने भी कहा है–

"तान्येव शास्त्राणि त एव शब्दास्त एव चार्था गुरवस्त एव।
इयान् विशेषः कवितापथेऽस्मिन् देव्या गिरां दृक् परिवर्तभेदः।।"

अर्थात् शास्त्र वे ही हैं, शास्त्रगत शब्द वे ही हैं, उन शब्दों के अर्थ वे ही हैं, पढानेवाले गुरुजन भी वे ही हैं, किन्तु कविता के मार्ग में केवल इतनी ही विशेषता अवश्य है कि माँ भगवती की दृष्टि पडे तो शब्द और अर्थ में परिवर्तन आजायेगा।

6. पाशतत्त्वविचारः

यद्यपि पाश का वर्णन स्तोत्र की व्याख्या में संक्षेपतः किया है तथापि उनके भेद की चर्चा नहीं की गयी है, उसको दर्शाया जा रहा है–

"घृणा लज्जा भयं शंका जुगुप्सा चेति पंचमी।
कुलं शीलं तथा मानमष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः।।
पाशबद्धो भवेज्जीवः पाश मुक्तः सदाशिवः।"

अर्थात् पाश 8 प्रकार के हैं। वे इस प्रकार है– घृणा, लज्जा, भय, शंका, निन्दा, कुलमर्यादा, चरित्र और सम्मान। इन पाशों से जीव बन्धन में पडता है और इन से विरक्त साधक सदाशिव रूप ही है। कहने का लक्ष्य यह है कि साधक को इन से बचना चाहिये।

7. शक्तिपात पर विचारः–

आजकल तथाकथित गुरुजन शक्तिपात के नाम से सीधे–साधे जिज्ञासु व अध्यात्म के पिपासु को ठग रहे हैं, इसलिये इस विषय में भी यहां प्रकाश डाला जा रहा है। पांचरात्र आगम के जया नामक संहिता में स्पष्ट कहा है कि –

"शक्त्यात्मकः स भगवान् सर्वशक्त्युपबृंहितः" (6.223)

वह भगवान शक्ति रूप ही है इसलिये वह समस्त शक्तियों से युक्त है। शैवागम में भी समस्त शक्तियों को 5 भेद में विभक्त किया गया है। वे हैं– सृष्टिशक्ति, पालनशक्ति, संहारशक्ति, निग्रहशक्ति और अनुग्रहशक्ति। इनमें से अनुग्रहशक्ति तब कार्यशील होती है जब साधकों की साधना से प्रभावित होकर अथवा जीवों

के अशेषक्लेशराशि को देखकर भगवान के हृदय में स्वतः कृपा आविर्भूत होती है। उसी कृपा का नाम अनुग्रहशक्ति, शक्तिपात और शक्तिपाक है। जैसे कि कहा है–

"या ह्युक्ता पंचमी शक्तिर्विष्णुसंकल्परूपिणी।
अनुग्रहात्मिका शक्तिः सा कृपा वैष्णवी परा।।"

(जया संहिता 14.30)।

अतः शक्तिपात कोई आपके भीतर या बाहर चमत्कार होना नहीं है किन्तु वह केवल आपकी साधना का फल रूप है। इसलिये यदि आपने साधना ठीक से की है तो शक्तिपात यानि भगवान की कृपा की वर्षा होना आपको स्वयं अपने भीतर अनुभव में आयेगा। अतः यदि आपकी साधना अभी परिपक्व नहीं हुयी है तो गुरु अथवा सिद्ध महापुरुष आदि कोई भी कुछ कर नहीं सकते। उनके माध्यम से जो भी होता है वह सब ईश्वर की कृपा मात्र है, ऐसे समझकर अपनी स्थिति जो भी है उससे आगे बढने केलिये उपासना, कर्मयोग और ज्ञानाभ्यास करते रहना चाहिये। इसलिये कहा गया है कि–

"समय से पहले और भाग्य से ज्यादा नहीं मिलता है"।

किसी से भी अधिक अपेक्षा करना मूर्खता है, अपनी साधना पर भरोसा रखें।

8. "चरण" पद पर विचार

श्लोकसंख्या 59 में महामुनि दूर्वासाजी ने कहा है "परतर चरणाकारतामभ्येति विद्वान्" यहां परतरचरणाकारता का क्या तात्पर्य है? संस्कृत टीकाकार ने "निर्वाणं चरणरूपं" अर्थ किया है। यहां ध्यान में रखना जरूरी है कि पूर्णाभिषेक होने पर चरणचतुष्टय की भी दीक्षा होती है, जिसमें चार शक्तिचरण है – रक्तचरण, शुक्ल चरण, मिश्रचरण, निर्वाणचरण और चार शिवचरण हैं – प्रकाश चरण, विमर्शचरण, प्रकाशविमर्शचरण और निर्वाण

चरण। ये सब गुरु मुख से ही जानने योग्य है। चरण शब्द "चरत्यनेन अथवा चरत्यसौ" इस व्युत्पत्ति से चर् धातु + यु = चरण सिद्ध हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है जिस साधन से अपना गन्तव्य यानि लक्ष्य प्राप्त करे वह चरण है अथवा साधनों से जो प्राप्तव्य है वह चरण है। इन दो अर्थों में दूसरा अर्थ ही यहां अपेक्षित है कयोंकि साधन तो गुरु से प्राप्त है ही, इसलिये साधन परक अर्थ ठीक नहीं किन्तु साधनों से प्राप्तव्य मोक्ष ही यहां चरण शब्द का मुख्य अर्थ है। व्यवहार में सभी प्रायः ऐसे प्रयोग करते हैं–भगवान के चरण, गुरु के चरण, माता के चरण, पिता के चरण, आचार्य के चरण, बडों के चरण, इत्यादि; इन सब व्यवहारों में भी चरण शब्द से मोक्ष ही लक्षित है। स्थूलदृष्टि से विचार करें तो भी चरण का अर्थ है पैर, हम लोग साष्टांग दण्डवत् यानि शरीर को लेटाकर जिसके भी पैरों को छूके प्रणाम करते है तो महसूस करते हैं की आशीर्वाद मिला, तात्पर्य यह है कि मोक्ष का द्वार खुला। सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें तो चरणों की पूजा की जाती है, जिसे पादपूजा कहते हैं, जिसमें हम केवल शरीर को झुकाते ही नहीं बल्कि हम हृदय से पूर्ण श्रद्धा और भक्ति भाव से समर्पित रहते हैं। इन दोनों की अपेक्षा से वह श्रेष्ठ है जो अभेददृष्टि अपनाकर स्वयं अपने आप को साक्षात् प्रत्यगात्मा परा शक्तिरूप नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वरूपभूतचैतन्य सदा अनुभव करता है वही वास्तव में चरण को प्राप्त कर लेता है। इसी को ब्राह्मी स्थिति कहा गया है। इस विषय में त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में कहा है–

"अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा।
यतो निर्विषयो नाम मनसो मुक्तिरिष्यते।। (5.4)

अर्थात् जिसलिये मन की निर्विषयक स्थिति को मुक्ति माना गया है इसलिये मुमुक्षु को सदा मन को विषय रहित स्थिति में बनाये रखने केलिये प्रयास करना चाहिये।

9. 64 उपचारों पर विचार

शाक्तआगम में कहा है–

''अन्तर्यागबहिर्यागौ गृहस्थस्सर्वदाचारेत्।''

अर्थात् साधक (विशेषतः गृहस्थ) को अवश्य बहिर्याग और अन्तर्याग दोनों करनी चाहिये, तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बाह्यपूजा 64 उपचारों से किया जाता है उसी प्रकार भीतर भी 9 चक्रों (शाक्त मत के अनुसार) अथवा 7 चक्रों (योग मत के अनुसार) पर 64 उपचारों की भावना से पूजा करनी चाहिये। शाक्तोपनिषदों में, अन्तर्याग में 64 उपचारों के चिन्तन करने की प्रक्रिया बतायी गयी है। कहने का अभिप्राय यह है की श्रीयन्त्र की हो अथवा देवी–देवताओं की मूर्तियों की हो, दो प्रकार से पूजा की जाती है। वे हैं बाह्यपूजा (अनेक द्रव्यों से) और अन्तः पूजा (द्रव्यों की कल्पना कर मानसिक भावना से)। 64 उपचारों से पूर्ण पूजा की जाती है(जिसे ''चतुःषष्ट्युपचार'' कहा जाता है), किन्तु सामर्थ्य और समय के अभाव में न्यूनतम 5 उपचारों से पूजा करने का विधान भी है (जिसे ''पंचोपचार'' कहा जाता है)। सामान्य तौर पर लोग 16 उपचारों से पूजा करते हैं (जिसे ''षोडशोपचार'' कहते हैं)। इसलिये जो साधक अन्तर्याग यानि मानसपूजा करने में समर्थ हो तो वे श्रीयन्त्र को अपने भीतर में विद्यमान 7 चक्रों (योगदर्शन के ग्रन्थों के अनुसार) अथवा 9 चक्रों के (शाक्तोपनिषद् के अनुसार) साथ अभेद करके 64 उपचाारों द्वारा मानस पूजन कर सकते हैं। वे 64 उपचार इस प्रकार है–

	उपचारनाम		उपचारनाम
1	आवाहनं	5	सम्मुखीकरणं
2	आसनं	6	रिवारादयोऽनुप्रार्थना
3	प्रतिष्ठापनं	7	अभिमुखीकरणं
4	सन्निधापनं	8	सफलीकरणं

9 अनुवरणं
10 संयोजनं (आसंजनं)
11 पाद्यं
12 अर्घ्यां
13 आचमनं
14 श्रमापनयनं (पादसेवा)
15 स्नानमण्डपानयनं
16 शेषगन्धमाल्याद्यपनयनं
17 भूषणावारोपणं
18 शरीरोद्वर्तनं
19 दन्तधावनं
20 ताम्बूलकरणं
21 वस्त्रान्तरपरिधानं
22 अभ्यंगस्नानीयधारणं
23 स्नापनं
24 शिरोवस्त्रबन्णनं
25 शरीरमलापकर्षणं
26 यक्षकर्दनानुलेपनं शुद्धोदकस्नानंच
27 कुंकुमविलेपनं
28 जलकणिकापनोदनं
29 दिव्यवस्त्रपरिधानं
30 पुनः समानयनं
31 सिंहासनाधिरोपणं
32 केश्यालीकरणं
33 कालागरुधूपनं
34 गर्भकग्रथनं
35 धम्मिल्लकरणं
36 स्रग्धारणं
37 गन्धधारणं
38 सिन्दूरधारणं
39 चन्द्रविकलाबन्धनं
40 तिलकसन्धारणं
41 मलयजानुलेपनं
42 पादांगुलीयकबंधनं
43 मंजीरबन्धनं
44 कंचीकलापबंधनं
45 करांगुलीयकधारणं
46 ककंकणादिधारणं
47 कज्जललाक्षादिधारणं
48 अकरीविलेखनं
49 यज्ञोपवीतधारणं
50 व्यजनसेवनं
51 नैवेद्यदानं
52 हस्तावनेजनं
53 ताम्बूलप्रदानं
54 दर्पणावलोकनं
55 छत्रधारणं
56 वालव्यजनवीजनं
57 गीतवादित्रश्रवणं
58 प्रदक्षिणानमस्कारः
59 स्तुतिः
60 प्रार्थनाकरणं
61 रंगवल्लीदीपाद्यवलोकनं
62 कर्पूरवीटिप्रदानं
63 मंचाधिरोहणं
64 तिरस्कारिणीप्रदानं

दोनों पद्धतियों अर्थात् योगपद्धति और शाक्तपद्धति के अनुसार किन उपचारों को किस चक्र पर भावना करना है? वह इस प्रकार है:– योगपद्धति– 1 से 6 = मूलाधारचक्र, 7 से 11 = स्वाधिष्ठानचक्र, 12 से 46 = मणिपूरचक्र, 47 से 52 = अनाहतचक्र, अनाहतचक्र, 53 से 60 = विशुद्धिचक्र, 61 से 63 = आज्ञाचक्र और 64 = सहस्रारचक्र। शाक्तपद्धति के अनुसार 1 से 6 = मुलाधारचक्र, 7 से 11 = स्वाधिष्ठानचक्र, 12 से 46 = मणिपूरचक्र, 47 से 52 = अनाहतचक्र, 53 से 60 = विशुद्धिचक्र, 61= तालुचक्र, 62= अज्ञाचक्र, 63= सहस्रारचक्र और 64= आकाशचक्र।

अन्त में व्याख्याता के दशष्टि में इस शक्ति महिम्नः स्तोत्र का सार यह है–'न गुरोः सदश्शो दाता न देवः शंकरोपमः। न कौलात् परमो योगी न विद्या त्रिपुरा परा।।1। न चैक्यात्परमं सौख्यं न वेदात् परमो विधिः। न बीजात्परमा सशष्टिर्न विद्या त्रिपुरा परा।2।' अर्थात् गुरु के समान दाता नहीं, शंकर के समान देवता नहीं, कौल (शाक्त उपासक) के समान श्रेष्ठ योगी नहीं, महात्रिपुरसुन्दरी (बाला विद्या) के समान कोई विद्या नहीं। ऐक्यानुभूति के समान परम आनन्द नहीं, वेद के समान कोई विधि नहीं, बाज के समान कोई सशष्टि नहीं और पुनः महात्रिपुरसुन्दरी (बाला विद्या) के समान कोई विद्या नहीं। इसलिये इस संसार में मनुष्य जन्म प्राप्त व्यक्ति को उपासना अवश्य करके मुक्त होने केलिये प्रयास करना चाहिये। माँ भगवती सब को सन्मार्ग में लगने की प्रेरणा दे और सब के हृदय में माँ भगवती के प्रति पूर्ण श्रद्धा और समर्पण भाव जागशत हो, इसी मंगलकामना के साथ गुरुपरम्परा व वैदिक संस्कशति की सेवा में इस ग्रन्थ को समर्पित करता हूँ।

।। हरिः ऊँतत्सत् ।।

उद्धृतग्रन्थानां सूची

ग्रन्थनाम		पृष्ठसंख्या
1	अमरकोशः	36,39,48,63,77,80,81,85,86,87, 90,92,100,103,111,114,117,120.
2	अम्बास्तव	36
3	अर्थसंग्रहः	141
4	अष्टाध्यायी	70,104
5	कामकलाविलासः	13,44
6	कामिका	140
7	कालिकापुराण	142
8	कौलोपनिषद्	37
9	चतुःशती	66,107,139
10	छान्दोग्योपनिषद्	113,141
11	जयासंहिता	150
12	ज्ञानार्णवं	139
13	तन्त्रराजः	66,101
14	त्रिपुरातापिन्युपनिषद्	152
15	त्रिपुरसुंदरीमानसपूजा	88
16	त्रिपुरार्णवः	12
17	त्रिपुरोपनिषद्	40,41
18	त्रिंशिका	77
19	तैत्तिरीयोपनिषद्	59
20	दक्षिणामूर्तिसंहिता	98
21	देव्यपराधक्षमायाचना	114
22	देवीभागवतं	48,60,70,109
23	धातुपाठः	125,143
24	नारदपंचरात्रं	126
25	नित्याषोडशिकार्णवः	24,33,38,122
26	नित्योत्सव	135
27	नृसिंहपूर्वतापिन्युप0	126
28	पराविभूतिस्तोत्रं	144
29	ब्रह्मविद्योपनिषद्	134
30	ब्रह्माण्डपुराणं	31,97
31	बृहदद्विष्णुपुराणं	68

....